अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-38, अंक-11, 16-31 जनवरी, 2015

गांधी, धर्मनिरपेक्षता और सांप्रदायिकता

गांधी की शहादत... हे राम!

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य-अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 38, अंक : 11, 16-31 जनवरी, 2015

संपादक — **बिमल कुमार**, मो. : 9235772595
कार्यकारी संपादक — **अशोक मोती**, मो. : 7488387174

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह, भवानी शंकर 'कुसुम', बिमल कुमार, अशोक मोती

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल: sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	पांच रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353

विज्ञापन दर

पूरा पृष्ठ	:	2000 रुपये
आधा पृष्ठ	:	1000 रुपये
चौथाई पृष्ठ	:	500 रुपये

इस अंक में...

1. दिल की तड़प... 2
2. गांधीजी को श्रद्धांजलि... 3
3. हे राम!... 4
4. महामानव गांधीजी... 9
5. गांधी, धर्मनिरपेक्षता और... 10
6. गांधीजी, कांग्रेस और विभाजन... 14
7. गांधी की हत्या : क्या सच, क्या... 17
8. गतिविधियां एवं समाचार... 19
9. कविता : बापू को तिलांजलि... 20
10. बापू को श्रद्धांजलि... 20

'सर्वोदय जगत' में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनके साथ सर्व सेवा संघ या संपादक मंडल का सहमत होना जरूरी नहीं है।

दिल की तड़प

❑ महात्मा गांधी

संसार के सभी धर्म शिक्षकों ने सत्य का जो महान् संदेश दिया है, मैं उस पर विश्वास करता हूं। मैं निरंतर यह प्रार्थना करता रहता हूं कि निन्दा करने वालों के प्रति मेरे मन में जरा भी रोष न आये। यदि हत्यारे की गोली का शिकार बनकर मुझे अपने प्राणों की बलि चढ़ानी पड़े तब भी मेरे होठों पर राम का ही नाम हो। जीवन की अंतिम घड़ी में मेरे होठों पर अपने हत्यारे के प्रति यदि क्रोध या फटकार हो तो मैं चाहूंगा कि मेरा नाम दम्भियों की फेहरिस्त में लिखा जाय। आज की दुनिया इस तरह के दम्भियों से भरी पड़ी है। सिर्फ मेरी मौत से ही यह साबित होगा कि क्या मैं मोहम्मद गांधी हूं, जिन्हादास हूं, हिन्दू-धर्म का दुश्मन हूं या हिन्दू धर्म का सच्चा सेवक और रक्षक हूं। हमें प्रतिशोध और बदले की भावना को दिल से निकाल देना चाहिए। हमें न परमात्मा से इनकार करना चाहिए न उसके काम अपने ऊपर लेने चाहिए। जिस देश पर हिमालय का साया हो, जिस देश की धरती को गंगा और जमुना की पावन धाराएं सींचती हों, उस देश में क्या हम परस्पर हिंसा द्वारा एक-दूसरे को मटियामेट करेंगे? मेरी यही दिली प्रार्थना है कि हे ईश्वर यह दुखदायी दृश्य देखने के लिए तू मुझे जिन्दा न रख और न मैं वह शर्मनाक नजारा देखूं कि इस पारस्परिक हिंसा से लोगों की रक्षा करने के लिए हमें अंग्रेजी फौजों की सहायता लेनी पड़े।

मैं कहता हूं कि मैं हिन्दू हूं, सच्चा हिन्दू हूं और सनातनी हिन्दू हूं, इसीलिए मैं मुसलमान भी हूं, सिख भी हूं, पारसी भी हूं, ईसाई भी हूं, यहूदी भी हूं, जितने मजहब हैं मैं सबको एक ही पेड़ की शाखें मानता हूं। मैं किस शाख को पसन्द करूं और किसको छोड़ दूं? किसकी पत्तियां मैं लूं और किसकी पत्तियां मैं छोड़ दूं। सब मजहब एक हैं ऐसा मैं बना हूं। उसका मैं क्या करूं? सब लोग अगर मेरी तरह समझने लगें तो हिन्दुस्तान में पूरी शांति हो जाय...। पाकिस्तान में मुसलमानों की बड़ी तादाद है। वे उसे दोजख बना सकते हैं। हिन्दुस्तान में जहां हिन्दुओं की बड़ी तादाद है वे हिन्दुस्तान को दोजख बना सकते हैं। जब दोनों दोजख जैसे बन जायें तब उनमें आजाद खयाल इनसान तो रह ही नहीं सकते।

जब से मैं हिन्दुस्तान आया तो मैंने तो वही किया है कि जिससे हिन्दू-मुसलमान एक बनें, धर्म से नहीं, लेकिन सब भाई-भाई की तरह रहें। लेकिन आज तो हम एक-दूसरे को दुश्मन की नजर से देखते हैं। कोई मुसलमान कैसा ही शरीफ हो तो हम ऐसा समझते हैं कि कोई मुसलमान शरीफ हो ही नहीं सकता। जब ऐसी दिमागी कैफियत हो तो हिन्दुस्तान में मेरे रहने लायक कहां जगह है? मैं ऐसे हिन्दुस्तान में जिन्दा रहकर क्या करूँगा? आज 125 वर्ष जिन्दा रहने की मेरी बात छूट गयी। 100 वर्ष की भी छूट गयी, 90 वर्ष की भी। आज मैं 80 वर्ष में पहुंच जाता हूं लेकिन वह भी मुझे चुभता है। मैं तो आपसे कहूंगा कि हम अपनी हैवानियत छोड़ें।

15 अगस्त को हमें स्वराज्य मिल गया लेकिन वह मेरे सपनों का स्वराज्य नहीं है। मैं उसे स्वराज्य नहीं मानता। मेरे सपनों का स्वराज्य तो मिला ही नहीं। यह कैसा स्वराज्य है जिसमें हिन्दू-मुसलमानों को अपना दुश्मन समझता है और मुसलमान हिन्दुओं और सिखों को। हम दुनिया में किसी को अपना दुश्मन बनाना नहीं चाहते और न हम किसी के दुश्मन बनना चाहते हैं। यह है मेरे सपनों का स्वराज्य। ऐसा स्वराज्य अभी नहीं आया है। क्या हमारे भाई-भाई आपस में दुश्मन बनेंगे? अगर हम ऊपर उठना चाहते हैं तो हमें भाई-भाई बनकर रहना होगा। लेकिन आज तो हम गिर गये हैं। हमारे दिलों में खून भरा है। बुग्ज और नफरत भरी है। आज ईश्वर की नजर में दोनों ही गुनहगार हैं। *('गांधीजी और हिन्दू-मुस्लिम एकता' से)*

संपादकीय

गांधीजी को श्रद्धांजलि

गांधीजी के शहादत दिवस पर गांधीजी का स्मरण करते हुए, हम अक्सर उस विचारधारा के संदर्भ में ही विमर्श करते हैं, जिस विचारधारा के प्रतिनिधि ने उनकी हत्या की थी।

गांधी-विचार के जिस मूल तत्त्व के खिलाफ गोडसे की विचारधारा थी, उस मूल तत्त्व को भी रेखांकित करना आवश्यक है। क्योंकि वह मूल तत्त्व पूंजी के वैश्वीकरण द्वारा लोगों को गुलाम बनाये रखने का भी विरोधी था तथा विश्व के संसाधनों की लूट का भी विरोधी था।

वह मूल तत्त्व था, व्यवस्थाएं लोगों को यंत्रवत् बना रही हैं तथा उन्हें उनकी अंतरात्मा के साथ जुड़ने में बाधित हो रही हैं। विज्ञान व प्रौद्योगिकी के सिद्धांत भी यंत्रवत् लागू किये जा रहे थे। धर्म भी व्यक्तियों को उनकी अंतरात्मा से जोड़ने के बजाय यंत्रवत् कर्मकांड लागू करने का माध्यम बन रहा था। इसीलिए यह लड़ाई अंतरात्मा प्रेरित मनुष्य निर्माण बनाम यंत्रवत् मनुष्य निर्माण के बीच की थी।

यदि अंतरात्मा प्रेरित मनुष्य होगा, तो धर्म उसके लिए आत्मज्ञान का माध्यम बनेगा तथा यह आत्मज्ञान अंततः सृष्टि की संपूर्ण इकाईयों के साथ 'एकता' का आधार बनेगा। मनुष्य का जो बाहरी रूप एवं उपाधि है, इससे परे उसका जो मूल तत्त्व है, उसके साथ एकाकार होना सम्भव होगा। इसीलिए गांधीजी मानते थे कि आप किसी भी धर्म को मानते हों, उसकी तात्त्विक मूल में जायेंगे, तो वह सबके साथ एकता का माध्यम बन जायेगा। धर्म की तात्त्विकता, अंतरात्मा के साथ एकता तथा मनुष्य मात्र (यहां तक कि समस्त चराचर) के साथ एकता का माध्यम बनती है।

दूसरी ओर अंतरात्मा के जुड़ाव से च्युत होकर, मनुष्य यंत्रवत् कार्य करता है। साम्प्रदायिक विद्वेष का स्रोत यही यंत्रवत् मनुष्य है। इस यंत्रवत् मनुष्य का निर्माण; पूंजीवाद के आगमन के पूर्व तक, राजसत्ता को समर्थन देने तथा टिकाये रखने के लिए जरूरी था। राजसत्ताएं धर्म के नाम पर साम्प्रदायिक गिरोहों को प्रश्रय देती थीं, जिसके बदले में; इन साम्प्रदायिक गिरोहों के मुखिया (तथाकथित धर्माचार्य) राजसत्ता को अपना समर्थन देते थे। साम्प्रदायिक गिरोह अपने अनुयायियों को यह बताते थे कि किस राजसत्ता को समर्थन देना है तथा अनुयायी यह काम सफलतापूर्वक तभी कर सकते थे, जब वे यंत्रवत् व्यवहार करें। इस प्रकार साम्प्रदायिक गिरोह, राजसत्ताओं के संघर्ष का एक हिस्सा बन गये। साम्प्रदायिक गिरोहों के बीच परस्पर विद्वेष एवं संघर्ष भी राजनीतिक सत्ता के संघर्ष का एक हिस्सा बनता चला गया।

साम्प्रदायिक गिरोहों के राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा से उभरी हिंसा की ही एक परिणति गांधीजी की हिंसा थी। अंतरात्मा से जुड़ने की प्रक्रिया, साम्प्रदायिक गिरोहों के राजनीतिक आधार को ही खत्म कर देती। इसीलिए साम्प्रदायिक गिरोहों को तथाकथित 'सेक्यूलरिज्म' स्वीकार्य है, क्योंकि उसके साथ वे अपने अस्तित्व को बचाकर चल सकते थे। गांधीजी के तरीके से तो उनका अस्तित्व ही खत्म हो जाता।

अंतरात्मा प्रेरित मनुष्य का निर्माण हो, इसी दृष्टिकोण से गांधीजी किसी भी प्रकार के धर्मान्तरण के खिलाफ थे। जबकि राजसत्ताओं की आवश्यकता थी कि राजसत्ता को समर्थन देने वाले धार्मिक-साम्प्रदायिक गरोह के दायरे में अधिक-से-अधिक लोग आ जायें। धर्मान्तरण इसी कारण जरूरी हुआ करता था।

पूंजीवाद के आने के बाद केन्द्रीकृत औद्योगीकरण का जो विस्तार हुआ तथा श्रेणीबद्ध शीर्षमुखी केन्द्रीकृत व्यवस्थाएं हर स्तर पर खड़ी होती चली गयीं, उसमें भी यंत्रवत् व्यक्तियों की आवश्यकता थी। गांधीजी पूंजीवाद या औद्योगिकीकरण के किसी एक स्वरूप, किसी एक संस्करण के विरोधी नहीं थे। बल्कि वे हर उस स्वरूप व संस्करण के विरोधी थे, जिसमें यंत्रवत् मनुष्य की आवश्यकता थी। उनके स्वदेशी की दृष्टि को तथा रचनात्मक कार्यों को इसी संदर्भ में समझना होगा। पूंजीवाद का ऐसा विकल्प उन्हें स्वीकार्य नहीं था, जिसमें अंतरात्मा प्रेरित मनुष्य का निर्माण न हो तथा यंत्रवत् मनुष्य की आवश्यकता बनी रहे।

गांधीजी का पूंजीवाद विरोध एवं साम्प्रदायिक गिरोहवाद का विरोध—दोनों इसी तात्त्विक मूल दृष्टि से उपजे थे। दूसरी ओर यंत्रवत् मनुष्य की आवश्यकता ही वह कारण थी, जिससे साम्प्रदायिक गिरोहवाद, पूंजीवाद के साथ; उसके पक्ष में खड़ा होता चला गया। पूंजीवाद ने भी जब कभी जरूरत पड़ी; साम्प्रदायिक गिरोहवाद से गठजोड़ करने में गुरेज नहीं किया।

आज यह स्थिति स्पष्ट रूप से उभरती दिख रही है। भारत में जिनका शासन है, उनको साम्प्रदायिक गिरोहवाद एवं निर्बाध पूंजीवाद; दोनों का खुला समर्थन प्राप्त है और सत्ता भी दोनों को अलग-अलग तरीके से भरपूर प्रश्रय दे रही है। गांधी को मानने वालों को तथा अन्य तमाम क्रांतिकारी शक्तियों को इस गठजोड़ के मूल आधार को समझना होगा। दोनों तरह की प्रवृत्तियों के विरुद्ध सत्याग्रह एवं रचनात्मक कार्यक्रम के माध्यम से विकल्प की लोकनीति को बढ़ाना होगा। गांधीजी के जिस विचारधारा को खत्म करने की कोशिश की गयी, उसे ताकत के साथ खड़ा करना ही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

विमल कुमार

30 जनवरी : शहादत दिवस

हे राम!

❑ मनु बेन गांधी

बिरला-भवन, नयी दिल्ली, 30-1-'48

नियमानुसार बापू प्रार्थना के लिए जगे, मुझे भी जगाया।...बहन उठी नहीं। आजकल सुशीला बहन नहीं हैं, इसलिए गीता-पाठ मुझे ही करना पड़ता है। भाई साहब और प्यारेलालजी जागते रहते हैं, तो वे आवाज में आवाज ही मिलाते हैं।...तो गीता के श्लोक बोल ही नहीं पाते।...उठे नहीं, इसलिए बापू ने दातुन करते हुए आज भी एक बात कही : ''मैं देख रहा हूँ कि मेरा प्रभाव मेरे निकट रहने वालों पर से भी उठता जा रहा है। प्रार्थना तो आत्मा को साफ करने की झाड़ू है। मैं प्रार्थना में अटल श्रद्धा रखता हूँ। ऐसी प्रार्थना करना...जैसी को पसन्द नहीं पड़ता, तो फिर उसे चाहिए कि मेरा त्याग ही कर दे। इसी में दोनों का भला है। यदि तुझमें इतनी हिम्मत हो, तो मेरी ओर से उसे यह कह देना। समझा देना कि ये सब बातें मुझे अच्छी नहीं लगतीं। यह सब देखने के लिए भगवान अब मुझे अधिक न रखे, यही चाहता हूँ। आज मैं तुझसे यह भजन सुनना चाहता हूँ :—

'थाके न थाके छतांय हो,
मानवी न लेजे विसामो।'

आश्चर्य की बात है कि आज पहली बार बापू ने यह भजन पसन्द किया! मुझे खुद को बापू के बारे में कुछ विलक्षण-सा ही लग रहा है। कभी-कभी यह भी आशंका होने लगती है कि कदाचित् ये पुनः अनशन तो नहीं करने जा रहे हैं? आज दोपहर को सरदार दादा विशेष रूप से मिलने के लिए आने वाले हैं। वे और बापू एकान्त में बातचीत करेंगे। उसके बाद कल-परसों मंत्रिमण्डल की बैठक बुलाकर सारा निर्णय किया जाएगा। देखें, ईश्वर इसे कहाँ तक सफल करता है? कल सुबह भाई भी आ रहे हैं।

प्रार्थना के बाद मैं बापू को बरामदे से भीतर ले आयी। उन्हें कपड़ा ओढ़ाया। बापू कल रात तैयार किये हुए कांग्रेस-संविधान के मसविदे का संशोधन करने बैठ गये। नियमानुसार पौने 5 बजे गरम जल, शहद और नीबू और पौने 6 बजे सन्तरे का रस 16 औंस लिया। अभी उपवास की कमजोरी तो है ही। लिखते-लिखते थक जाने से बापू बीच ही में सो गये और मैंने उनके पैर भी दबाये।

पू. किशोरलाल भाई को कल जो पत्र लिखा था, नकल न हो सकने के कारण वह बापू के कागजों में ही पड़ा रह गया। बापू को यह अच्छा नहीं लगा। मैंने सहज ही पूछा कि ''इसमें एक पंक्ति यह लिख दूँ कि हम लोग दूसरी को वर्धा जानेवाले हैं?'', तो बापू ने कहाः ''कल की कौन जानता है? अगर जाना तय ही हो जाएगा, तो आज प्रार्थना में कह दूँगा। फिर रात में रेकार्ड रिले होगा, तो उसमें वह आ ही जाएगा। फिर भी इस तरह चिट्ठी पड़ी रहनी नहीं चाहिए थी। भले ही यह काम बिसेन का हो, लेकिन तू मेरे किसी भी काम से मुक्त नहीं हो सकती। दूसरों की गलती होने पर भी मैं उसे तेरी ही गलती मानता हूँ, अगर तू उसे स्वीकार करे।'' मैंने कहा : ''मुझे तो स्वीकार करना ही होगा।'' बापू प्रसन्न हो गये।

टहलते समय श्रीमती राजेन नेहरू आयीं। मैं घूमने के लिए जानेवाली नहीं थी, पर मुझे जबर्दस्ती चलने के लिए कहा।

आठ बजे नियमानुसार मालिश और स्नान हुआ। मालिश के समय अखबार देखे। बंगाली पाठ किया। फिर मालिश के कमरे से बाथरूम में लाया गया। उस समय उन्होंने प्यारेलालजी से कहा : ''कल रात मैंने कांग्रेस का मसविदा (संविधान) 'हरिजन' में भेजने के लिए बना रखा है। उसे ठीक से देख लें और विचारों की जो कमी रह गयी हो, उसे पूरी कर दें। बहुत ही थके-माँदे मैंने उसे तैयार किया है।''

नियमानुसार मैं बापू को बाथ देती रही। मुझसे कहने लगे कि ''तू हाथ की कसरत करती है या नहीं?'' मैंने 'ना' कहा। इस पर कहने लगे : ''यह तो मुझे जरा भी पसन्द नहीं।'' मैंने कहा : ''फिर तो करना ही होगा।'' बापू ने कहा : ''अवश्य! तेरा वजन नहीं बढ़ता और तबीयत नहीं सुधरती, इससे मुझे बहुत ही दुःख होता है। जब तू अपने बाप के यहाँ से नोआखाली आयी, तो कितनी तन्दुरुस्त थी! तेरा शरीर नहीं सुधरता, इसका कारण तेरा भावुक और संवेदनशील स्वभाव ही है। कभी किसी के दुःख से अधिक दुःखी या किसी के सुख से अधिक प्रसन्न न होना चाहिए। दोनों में सन्तुलित स्वभाव रखने पर ही भगवान का सान्निध्य पाना आसान होता है। यह कानून मेरा नहीं, अनादिकाल से चला आ रहा है और सभी धर्म-ग्रन्थों में लिखा है। स्थितप्रज्ञ होने के उपायों में इसे भी एक माना गया है। तू 18 वर्ष की उभरती छोकरी है। मैंने तेरा मन कितना गढ़ा है, इसका खयाल तुझे आज नहीं हो सकता। नोआखाली से लेकर आज तक मैंने तुझे खूब तपाया है और तरह-तरह के विलक्षण अनुभवों से गढ़ा है। भले ही आज तुझे इसका मूल्य न मालूम पड़े, लेकिन मेरे ये शब्द लिख रखना कि तेरे भावी जीवन के लिए यह बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगा, कदाचित् मैं जिन्दा रहूँ या न रहूँ।

''तू जानती ही है कि...आज सुबह प्रार्थना के समय नहीं उठी। इसलिए मैं सोच रहा हूँ कि आखिर मुझमें कहाँ खामी है?

दूसरी लड़कियाँ या और कोई इस यज्ञ में मेरा साझीदार नहीं। अकेली तू ही मेरी सेवा और मेरे कामों की जिम्मेदारी उठा रही है। इसमें तनिक भी भूल नहीं होने देती। लेकिन अपनी तबीयत सँभाल रखना भी मेरी सेवा का एक अंग है। अतः यह जिम्मेदारी भी तुझे अदा करनी ही चाहिए।''—बाथ के समय बापू ने बड़े ही प्रेम से ये बातें कहीं और मेरी पीठ सहलायी।

बाथ से निकलने के बाद वजन किया गया—साढ़े 109 पौण्ड हुआ। भोजन में उबाला हुआ शाक, बारह औंस दूध, एक-आध मूली और करीब चार-पाँच पके टमाटर और चार सन्तरों का रस लिया। खाते समय प्यारेलालजी के साथ नोआखाली के विषय में बातें हुईं। उन्होंने आबादी की अदला-बदली के बारे में बापू से पूछा, जिस पर बापू ने साफ-साफ कह दिया :

''हम लोगों ने तो 'करेंगे या मरेंगे' यह मंत्र लेकर ही नोआखाली का वरण किया है। भले ही आज मैं यहाँ बैठा हुआ हूँ, पर काम तो नोआखाली का ही चल रहा है। हमें जनता को भी इसके लिए तैयार करना चाहिए कि वह अपनी इज्जत और सम्मान बनाये रखने के लिए बहादुरी के साथ वहीं रहे। भले ही अन्ततः वहाँ गिने-गिनाये लोग ही रह जाएँ, लेकिन जहाँ दुर्बलता से ही सामर्थ्य पैदा करनी हो, वहाँ दूसरा उपाय ही क्या है? आखिर सशस्त्र युद्ध में भी साधारण सिपाहियों का सफाया होता ही है। फिर अहिंसक युद्ध में उससे भिन्न और हो ही क्या सकता है?''—और उन्हें नोआखाली जाने का ही सुझाव दिया।

फिर पैरों में घी मलवाते हुए बापू ने थोड़ा आराम किया। थोड़ी देर सोकर पुनः उठे और बाथरूम में जाने के लिए बाहर के पटरे पर से आ रहे थे। मैंने कहा : ''बापू! अकेले ही अकेले आ रहे हैं, तो कैसे लग रहे हैं?'' (कमजोरी के कारण इधर वे बिना किसी का सहारा लिये चलते नहीं थे) बापू ने कहा : ''क्यों, अच्छा दीखता है न? 'एकला चलो'!''

साढ़े 12 बजे 'डॉ. भार्गव को नर्सिंग होम बनाने के लिए एक मकान चाहिए', यतीमखाने की बात कही गयी। बापू ने कहा कि ''जब स्थानीय मुसलमान यहाँ आते हैं, तब मुझे इसके लिए याद दिलाएँ।'' उन्होंने यह भी कहा कि ''हुकूमत मुझसे डर-डरकर कब तक चलेगी? मेरे डर से नहीं, बल्कि अपने मन से करना चाहिए। जब नियोगी यहाँ आयें, तो पूछ देखें।'' बापू के पास मुसलमान लोग आये, तो उन्हें याद दिलायी गयी। लेकिन उन्होंने कहा कि ''अभी उसे न दिया जाए, तो अच्छा है।'' बापू ने कहा : ''अच्छा, मैंने तो वैसे ही पूछ लिया। इसके पीछे हमें वक्त देने की जरूरत ही क्या है?''

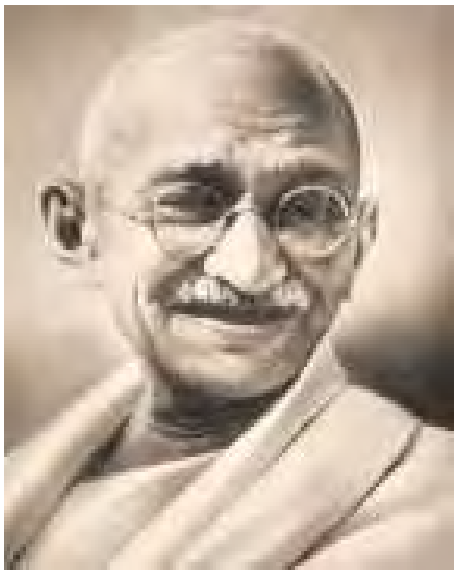

उसके बाद मौलाना रहमान ने सेवाग्राम के बारे में पूछते हुए कहा कि ''आप वहाँ जा सकते हैं, पर 14 को वापस लौट ही आएँ।'' बापू ने कहा : ''हाँ, चौदह को तो मैं यहीं रहूँगा। फिर वह सब तो खुदा के हाथ में है। वह तो आसमानी सुलतानी बात है।''

महादेव भाई की जीवनी लिखने का—डायरी-संपादन करने का काम व्यवस्थित होने जा रहा था। उस बारे में शान्तिकुमार भाई के साथ बातें कीं। शान्तिकुमार भाई की शिकायत थी कि ''चन्द्रशंकर भाई और नवजीवन के बीच झगड़ा चल रहा है। अधिक पैसा लेने की बात है।''

बापू ने कहा : ''जहाँ देखता हूँ, वहीं जैसे यादव आपस में कट मरे, वही स्थिति हमारी है। हम लोग आपस में झगड़ा कर समाज की कितनी हानि कर रहे हैं, इसका खयाल किसी को भी नहीं आता। इसमें आप या और कोई कर ही क्या सकता है? इन सबमें मेरी ही खामी है। ईश्वर ने ही मुझे अन्धा बना दिया हो, तो कोई क्या कर सकता है? फिर भी अपने जीते जी यह सब अपनी आँखों देखकर जितना सुधार सकूँ, उतना सुधार लूँगा, जिससे भावी पीढ़ी की गाली न खानी पड़े; इतना ही भगवान का आभार मानिये।

''यह काम मुझे ही करना चाहिए। डायरी को अच्छी तरह ग्रन्थरूप में बनाना ही होगा। नरहरि की तबीयत साथ नहीं देती और अब?...इसने तो मेरे सभी कामों से छुट्टी पा ली है। लेकिन वह बिना समझे-बूझे ली है, यह कैसे कहा जा सकता है? क्योंकि सभी अपने-अपने विचार के लिए स्वतन्त्र हैं। यदि चन्द्रशंकर यह बोझ उठाता है, तो वह अपनी कमाई खर्च करेगा। इन दोनों के अक्षरों में कितना साम्य है? मैं उसे लिखूँगा।''

डॉ. सिल्वा और उसकी लड़की लंका में मुख्य प्रतिनिधि थे। उन्हें अपना आटोग्राफ दिया।

दोपहर में बिसेन भाई के साथ चिट्ठियों का रुका हुआ काम पूरा करने के लिए कहा। 2 बजे मिट्टी ली। पैर दबाये। बापू ने मिट्टी उतारी। हम लोग बापू से छुट्टी लेकर शहर में एक सम्बन्धी के यहाँ मिलने गये। वहाँ से सवा 4 बजे लौटे।

यदि जीवित रहा तो...

बापू और सरदार दादा बातचीत कर रहे थे।...काठियावाड़ के बारे में भी चर्चा हुई। इसी बीच काठियावाड़ के नेता रसिक भाई पारीख और ढेबर भाई भी आ गये। उन्हें बापू से मिलना था। लेकिन आज तो एक क्षण खाली नहीं है। फिर भी मैंने उनसे कहा कि ''बापू से पूछकर समय तय किये देती हूँ।'' बापू और सरदार दादा बातों में एकदम

तल्लीन थे। मैंने पूछा तो कहने लगे : ''उनसे कहो कि यदि जिन्दा रहा, तो प्रार्थना के बाद टहलते समय बातें कर लेंगे।'' मैंने उनसे प्रार्थना के लिए रुक जाने को कहा। कारण यदि वे प्रार्थना के बाद तत्काल न मिल लेंगे, तो और कोई घुस ही जाएगा और फिर बातें न कर पाएँगे। वे रुक गये और बापू के कमरे में जा बैठे।

[इसके बाद की डायरी मैं पहली फरवरी की रात में दो बजे लिख रही हूँ। क्या लिखूँ। समझ में ही नहीं आता! पूरे बिरला-भवन में रोने के सिवा कुछ भी नहीं है। अरे! क्या बापू सोये हुए तो नहीं हैं? मुझे इतनी देर तक लिखती देख उलाहना देने के लिए उठकर तो नहीं आएँगे? नहीं, नहीं, बापू! आप मेरी भूल क्षणभर भी क्षमा नहीं करते थे और आज इतने उदार हो गये? हाय, मुझ पर गजब ढा गया! मुझसे कहते थे : ''इस यज्ञ में तू और मैं दो ही हैं। तू मुझे छोड़ सकती है, पर मैं तुझे नहीं छोड़ सकता।'' लेकिन आज तो बापू! आप ही मुझे छोड़ गये! भाई कल आने वाले हैं। क्या मुझे सौंप देने के लिए ही तो चार दिन पहले उनको चिट्ठी नहीं लिखी? कुछ भी नहीं सूझता!...पंडितजी का यह बुक्का फाड़-फाड़कर रोना अच्छे-अच्छे धीर-गम्भीर लोगों का भी हृदय विदीर्ण कर देता है। नन्हा गोपू कह रहा है : ''मनु बहन! दादा क्यों सोये हैं?''...]

थाके न थाके छताये हो!

...बापू सरदार दादा के साथ बातचीत में इतने तन्मय हो गये थे कि दस मिनट देर हो गयी। इस गम्भीर वातावरण में उन्हें विक्षेप करने की किसी को भी हिम्मत नहीं हुई। आखिर मणि बहन ने हिम्मत की ही, क्योंकि यह सभी जानते थे कि यदि बापू को समय का ध्यान न कराया जाए, तो बाद में हम लोगों पर नाराज हो जाएँगे। बातें करते हुए ही बापू ने भोजन भी कर लिया। भोजन में चौदह औंस बकरी का दूध, चार औंस शाक का रस और तीन सन्तरे थे। बातें करते हुए उन्होंने कताई भी कर ली। बिना यज्ञ किये खाना चोरी का खाना माना जाता है। अतः वे बिना कताई किये रह ही कैसे सकते हैं? आज ब्राह्म मुहूर्त में कभी न कहलवाया हुआ यह भजन कि 'थाके न थाके छताये हो, मानवी न लेजे विसामों' मुझसे गवाया। क्या बापू उसे साकार करना चाहते रहे हैं? चाहे जो हो, पलभर भी विश्राम लिये बगैर अपनी ज्वलंत प्रवृत्ति का वेग और भी बढ़ा दिया। वे एकदम उठ खड़े हुए।

नर्सों का धर्म

मैंने अपने हाथ में रोज की तरह कलम, बापू की माला, पीकदानी, चश्मे का केस और जिस पर प्रवचन लिखती हूँ, वह नोटबुक ले ली। दस मिनट देर हो जाने के लिए बापू ने रास्ते में नापसन्दगी जाहिर की : ''आप लोग ही तो मेरी घड़ी हैं न? फिर मैं घड़ी के लिए क्यों रुका रहूँ?'' खासकर आजकल बापू घड़ी देखते ही नहीं। समयानुसार एक के बाद एक सारा काम यों ही कर लिया करते हैं। घड़ी को चाबी भी हम लोगों में से ही कोई दे दिया करता था। इसीलिए उन्होंने यह कहा। मैंने कहा कि ''बापू! आपकी घड़ी बेचारी उपेक्षा से दुबली होती होगी।'' इसी के उत्तर में उन्होंने यह बात कही। विनोद तो किया ही, पर साथ ही यह भी कहा कि ''मुझे ऐसी देरी बिलकुल पसन्द नहीं।''

चाँद बहन को दिल्ली में ही रखने की बात कही। ''अभी खुराक की मात्रा थोड़ी-सी ही बढ़ायी है।'' यद्यपि अनशन के बाद अनाज तो अभी शुरू करना ही नहीं है, ''पर अब प्रवाही (तरल खाद्य) कम करना है'' ये बातें करते हुए प्रार्थना-स्थल की सीढ़ियाँ चढ़े। कहने लगे : ''प्रार्थना में दस मिनट देर हो गयी, इसमें आप लोगों का ही दोष है।'' सरदार दादा दो-चार दिनों बाद आये थे और ऐसे गम्भीर प्रश्नों पर चर्चा कर रहे थे कि टोकने की हिम्मत ही नहीं हुई, यह भी बापू को पसन्द नहीं पड़ा। उन्होंने कहा : ''नर्सों का तो धर्म है कि साक्षात ईश्वर भी बैठा हो, तो भी वे अपना धर्म, अपना कर्तव्य पूरा करें। किसी रोगी को दवा पिलाने का समय हो गया हो और किसी भी कारण यह विचार करते रहें कि उसके पास कैसे जाया जाए, तो रोगी मर ही जाएगा। यह भी ऐसी ही बात है। प्रार्थना में एक मिनट की देर भी मुझे खल जाती है।''

यह नियम-सा बन गया था कि प्रार्थना में जाते समय हम लोग ही बापू की लाठी का काम करती थीं। कभी हम लोग नाराज हो जाएँ और इस नियम के अनुसार लाठी बनना न चाहें, तो बापू हम लोगों को जबरदस्ती पकड़कर लाठी बना लेते थे। लौटते समय दूसरी लड़कियाँ रहती थीं।

हे राम!

बापू चार सीढ़ियाँ चढ़े और सामने देख नियमानुसार हम लोगों के कन्धे पर से अपने हाथ उठाकर उन्होंने जनता को प्रणाम किया और आगे बढ़ने लगे। मैं उनके दाहिनी ओर थी। मेरी ही तरफ से एक हृष्ट-पुष्ट युवक, जो खाकी वर्दी पहने और हाथ जोड़े हुए था, भीड़ को चीरता हुआ एकदम घुस आया। मैं समझी कि यह बापू के चरण छूना चाहता है; रोज ऐसा ही हुआ करता था। बापू चाहे जहाँ जाएँ, लोग उनका चरण छूने और प्रणाम करने के लिए पहुँच ही जाते थे। हम लोग भी अपने ढंग से उनसे कहा करते कि बापू को यह ढंग पसन्द नहीं। पैर छूकर चरण-रज लेनेवालों से बापू भी कहा ही करते कि ''मैं तो साधारण मानव हूँ। मेरी चरण-रज क्यों लेते हैं?'' इसी कारण मैंने इस आगे आनेवाले आदमी के हाथ को धक्का देते हुए कहा : ''भाई! बापू को दस मिनट देर हो गयी है, आप क्यों सता रहे हैं?'' लेकिन उसने मुझे इस तरह जोर से धक्का मारा कि मेरे हाथ से माला, पीकदानी और नोटबुक नीचे गिर गयी। जब तक और चीजें गिरीं, मैं उस आदमी से जूझती ही रही। लेकिन जब माला भी गिर गयी, तो उसे उठाने के लिए नीचे झुकी। इसी बीच दन-दन...एक के बाद एक तीन गोलियाँ दगीं। अँधेरा छा गया! वातावरण धूमिल हो उठा और गगनभेदी आवाज हुई। ''हे रा—म! हे

राम...'' कहते हुए बापू मानो सामने पैदल ही छाती खोलकर चले जा रहे थे। वे हाथ जोड़े हुए थे और तत्काल वैसे ही नीचे जमीन पर आ गिरे। कितने ही लोगों ने उस समय बापू को पकड़ने का यत्न किया। आभा बहन भी नीचे गिर गयीं। एकदम उन्होंने बापू का सिर अपनी गोद में ले लिया। मैं तो समझ ही नहीं पायी कि आखिर यह क्या हो गया? यह सारी घटना घटते मुश्किल से 3-4 मिनट लगे होंगे। धुँआ इतना घना था। गोलियों की आवाज से मेरे कान बहरे-से हो गये। लोगों की भीड़ उमड़ पड़ी।

हम दोनों लड़कियों का क्या हाल हुआ होगा, यह तो शब्दों में लिखा ही नहीं जा सकता। सफेद वस्त्रों पर से रक्त की धार छूट पड़ी। बापू की घड़ी में ठीक 5 बजकर 17 मिनट हुए थे। मानो बापू जुड़े हुए हाथों से हरी घास में पृथ्वी माता की गोद में अपार निद्रा में सो रहे हों और हमारे अनुचित साहस पर नाराज न होने पर माफ कर देने के लिए कह रहे हों।

उन्हें कमरे में ले जाने तक दस मिनट तो लग ही गये। दुर्भाग्य से वहाँ कोई डॉक्टर भी नहीं मिला। सुशीला बहन की प्राथमिक चिकित्सा (फर्स्ट एड) की पेटी में खोजने पर भी कोई खास दवा नहीं मिली। वे कहते ही थे कि ''मेरा सच्चा डॉक्टर तो रामजी है।'' हम अल्पात्मा लोग अपने स्वार्थ के लिए उन्हें जिलाने के निमित्त उनके अपने मात्र के लिए स्वीकृत इस सिद्धान्त को भ्रष्ट कर दें, शायद इसीलिए हमें उस समय कुछ सूझ नहीं पाया हो! सरदार दादा तो अभी अपने घर भी नहीं पहुँचे होंगे कि पीछे लौटे। हम लोग तो बुक्का फाड़-फाड़कर रो रहे थे, पर बापू को आज दया नहीं आ रही थी! किसी समय मुझ जैसी को उदास देखते, तो उसका कारण जानने के लिए पिल पड़ते और उसे जानकर ही छोड़ते थे। लेकिन आज तो बापू सब कुछ सहन किये जा रहे हैं!

सात बार की ऑटोमेटिक पिस्तौल की पहली गोली मध्य रेखा से साढ़े तीन इंच दाहिनी ओर नाभि से ढाई इंच ऊपर पेट में लगी। दूसरी मध्य रेखा से एक इंच दूर और तीसरी दाहिनी ओर छाती में मध्य रेखा से चार इंच दूर लगी थी। पहली और दूसरी गोली शरीर के आर-पार हो गयी थी और तीसरी फुफ्फुस में समा गयी थी। उसका ऊपर का कवच बाद में कपड़ों में मिला और आर-पार निकली हुई गोलियाँ तो प्रार्थना-स्थल पर ही मिलीं। अत्यधिक रक्त बहने के कारण चेहरा तो करीब दस मिनट में ही सफेद पड़ गया।

बापू नहीं रहे!

भाई साहब ने तो कलेजे पर पत्थर रखकर अस्पताल में फोन का ताँता ही लगा दिया। बाहर तो हजारों मानवों की भीड़ उमड़ पड़ी थी। भाई साहब बड़ी मुश्किल से सरदार के बंगले से होकर विलिंगटन अस्पताल में पहुँचे। लेकिन वहाँ से भी निराश होकर वापस लौट आये। इस बीच कन्हैयालाल मुंशी आ गये। सरदार दादा भी तुरत पहुँच गये। मणिबेन ने हम लोगों को ढाढ़स बँधाया। मुझे गीता-पाठ शुरू करने के लिए कहा। मणिबेन के आने से और उनके तथा सरदार दादा के आश्वासन की ममताभरी मदद मिलने से मैं अपने को थोड़ा-सा सँभाल पायी और गीता-पाठ शुरू कर दिया। मुंशीजी ने पाठ में पूरा साथ दिया। इसी बीच कर्नल भार्गव आ पहुँचे और उन्होंने बापू का परीक्षण शुरू कर दिया। दो मिनट तो सरदार दादा से लेकर हम सभी उत्सुकताभरी आश्वासन की एक लहर का अनुभव करने लगे। ऐसा लगा कि राहत की कुछ खबर सुनायी पड़े। किन्तु उन्हें तो देखते ही मालूम पड़ गया कि शरीर में अब कुछ जान नहीं। लेकिन कहावत है न कि डॉक्टर तो अन्त तक कुछ कहता ही नहीं। महापुरुष के प्रयाण का यह भयंकर समाचार देना इस डॉक्टर के लिए बापू को बेधने वाली भीषण गोली से भी कठोर था। इन्होंने मेरा तो ऑपरेशन बड़ी ही सावधानी से किया था। आज सुबह ही इनके और इनके नर्सिंग-होम के बारे में बातें हो चुकी थीं। समय बिताने के लिए इन्होंने दस-पन्द्रह मिनट लगा दिये और अन्त में कह ही दिया : ''मनु बेटी! अब बापू नहीं रहे!''...वज्रप्रहार-सा यह समाचार सुनने के साथ ही जिस कमरे में रात में हम बच्चे और बापू किलकारियाँ भरते थे, वहीं भयंकर विलाप छा गया। देवदास काका, गोपू, दोनों सबसे छोटे लड़के और नन्हा पौत्र—सभी बापू की छाती पर कठिन वेदना से विलाप करने लगे। और पंडितजी तो...ओहो!... भगवन्, ऐसा दिन तो दुश्मन को भी देखने को न मिले! नन्हे बच्चे की तरह सरदार दादा की गोद में मुँह छिपाकर, बिलख-बिलखकर रोने लगे। फिर हम जैसों की तो बात ही क्या थी?

अन्तिम स्मृति की प्रसादी

देखते-देखते लाखों की भीड़ जुट गयी। करीब घण्टेभर तक यह सब चलता रहा। आखिर सरदार दादा ने अपने लौहपुरुष के बाने के अनुरूप इस कठोरतम परीक्षा को भी पास करने में कोई कोर-कसर नहीं दिखायी। अकेले वे ही सभी को ढाढ़स बँधा रहे थे। बापू के चश्मे और चप्पल का कहीं पता न था। तारीख 30 को प्रार्थना में जाने से पूर्व बातचीत करते हुए बापू ने खुद ही अपने नख काटे और मुझे फेंकने के लिए दिये थे। लेकिन मैं रसिक भाई और ढेबर भाई से बातें करने में उलझी रही, इसलिए वे कागज पर

के नख वैसे ही रह गये। मैंने उन्हें अनमोल रत्न की तरह उठाकर सन्दूक में रख दिया (उनमें एक अँगूठे का, एक उँगली का और एक छोटी उँगली का भी नख था।)। इसे मैंने आज उनके शरीर का अन्तिम स्मृति की प्रसादी के रूप में अपने पास सुरक्षित रख लिया।

हमारे बापू!

अन्त में लार्ड माउण्टबैटन सभी को शान्त करने लगे। बाहर की भीड़ पूज्य बापू का समाचार सुनने के लिए आतुर है, इसलिए सरदार दादा ने रेडियो पर सारी बातें प्रसारित कर दीं। पंडितजी तो बोल ही नहीं पाते थे। सारी हिम्मत बटोरकर बोले : ''हमारे बापू...'' फिर एक गहरी साँस छोड़कर सिसकते हुए कहा : ''बापू अब हमारे पास नहीं रहे।''... उस समय तो धरती भी काँप उठी, इस तरह जनता बिलख उठी।

अब कैसे करना!

आखिर जनता की असाधारण भीड़ देख छत पर से ही बापू का दर्शन कराने की व्यवस्था होने लगी। उस समय मैं किसी काम से बाहर निकली। पंडितजी ने एकदम मुझे पकड़ लिया और क्षणभर भूल गये, कहने लगे : मनु! आओ बापू को पूछो, अब कैसे करना! हे भगवन्!...ऐसे विद्वान, अपने देश और दुनिया के इस महापुरुष...! मैं तो उनके साये में खुलकर रो पड़ी। वे भी उतने ही रोये। उस समय हम दोनों की स्थिति में इतनी एकतानता थी कि इतने बड़े पंडितजी भी मुझे जैसी नादान बालिका को आश्वस्त करने में असमर्थ सिद्ध हुए।

शायद बापू जाग जाएँ!

...इसी बीच विभिन्न देशों के राजदूत आते हुए दीख पड़े। उनके साथ पंडितजी भीतर आये। सतत गीता-पाठ करने में मैं ही प्रमुख थी। भाई साहब और काका सारी व्यवस्था करने के निमित्त बार-बार बाहर आते-जाते थे। सुशीला बहन तो थी ही नहीं। और सबसे श्लोक कहते नहीं बनते थे। प्यारेलालजी भी व्यवस्था में लगे हुए थे। फिर पंडितजी कहने लगे : ''मनु! और जोर से गीता-पाठ करो, शायद बापू जाग जाएँ!'' इतने वैज्ञानिक विद्वान होकर भी वे क्षणभर सब कुछ भूलकर बार-बार आते और बापू के शरीर पर हाथ फेरकर जाते थे, मानो स्वयं भूल तो नहीं कर रहे हों कि बापू सचमुच नहीं हैं।

महात्मा गांधी की जय!

और कैमरे वालों का तो पूछना ही क्या है? छत पर मंच बनाया गया और बापू का शव लाया गया। उसे देख छोटे-बड़े, आबाल-वृद्ध सभी की आँखों से अविरल अश्रुधाराएँ बह पड़ीं, मानो चारों ओर से बारिश ही हो रही हो। 'महात्मा गांधी की जय' के नारों से आकाश गूँज उठा। देखते-देखते जनता की श्रद्धांजलियों के साथ फूलों और पैसों का ढेर ही लग गया। सर्वधर्मों की समानतापूर्वक प्रार्थना जारी थी।

दो बजे बापू की देह को नहलाने के लिए बाथरूम में ले जानेवाले थे। लेकिन अच्छा हुआ कि पूज्य शान्तिकुमार भाई आ पहुँचे। वे पूज्य बा के अन्तिम समय में भी उपस्थित थे और आज बापू के भी! उन्होंने हिन्दूधर्मानुसार अन्त्यविधि करायी, याने अर्थी बनाना, गाय के गोबर से सारी जमीन लीपना आदि। यदि वे यह सब न बतलाते, तो साधारणतः हममें से कोई भी यह नहीं जानता था।

यह घड़ी भी उतनी ही भयंकर थी। बापू की देह बाथरूम में लायी गयी। एक-एक कपड़ा उतारा गया। बापू की आस्ट्रेलियन ऊन की शाल गोली से छिद गयी थी और तीन जगह जल भी गयी थी। धोती और चादर भी खून से सराबोर थीं।

बापू की देह पटरे पर सुलायी गयी। रक्त बहते हुए चरण 'भाई एकलो जाणे रे' गीत की इस कड़ी को साकार कर रहे थे। काका और हम सब इस तरह आर-पार बिंधे हुए बापू के शरीर को देख फूट-फूटकर रो रहे थे, फिर भी क्रूर विधाता को दया नहीं आयी! हमारी हृदय-विदारक चीखों से किसे क्योंकर दया आये? कारण हम लोग अत्यन्त पापी थे, फिर विधाता की दया की आशा कैसे रख सकते हैं? कड़कड़ाती सर्दी और हिम-सा ठण्डा पानी बापू की देह पर छोड़ने की कौन हिम्मत करेगा?...

बापू को नहलाकर पटरा कमरे के बीच रखा गया। उस पर सफेद खादी की चादर बिछायी गयी और बापू की देह को सुलाया गया।

'कर ले सिंगार!'

भाई साहब ने उनके गले में सूत का हार और उनकी रामनाम जपने की माला पहनायी। गले में और छाती पर चन्दन-केसर का लेप किया गया। मस्तक पर कुंकुम तिलक लगाया गया। सिर की बाजू पत्तियों से 'हे राम' और पैर की बाजू 'ॐ' लिखा गया। सारा कमरा गुलाब और अन्य सुगन्धित फूलों से इतना सुवासित हो उठा था, मानो अर्थी सिर्फ फूलों से ही बनी हो। देखते-देखते साढ़े 3 का घण्टा बजा। आज मुझे जगाने के लिए बापू के प्रेमभरे हाथ का स्पर्श न हो पाया। आज भाई साहब को उठाते हुए 'व्रजकिशन' की पुकार सुनायी नहीं पड़ती थी। सभी ने कहा : ''नियत समय पर ब्राह्म मुहूर्त में प्रार्थना की जाए।'' आज हम लोगों को आदेश देकर 'नम्यो' कहनेवाले बापू की आवाज नहीं थी। 'दो मिनट की शान्ति' कौन कहेगा?

और 'ईशावास्यमिदं सर्वम्' से आरम्भ कर सारी प्रार्थना बड़ी मुश्किल से शुरू की। 'कर ले सिंगार' भजन गाया और फिर 'वहाँ से नहीं आना होगा...'। क्या बापू के इस पवित्र और तेजस्वी चेहरे का पुनः कभी भी दर्शन न होगा? ये प्रेमभरी आँखें! यह आश्रयदायी वात्सल्य! यह मुक्त हास्य! अजीब निडरताभरी विशाल छाती और इस चमकते श्वेत चर्म वाले बापू का कभी भी दर्शन न होगा? राग तो है आसावरी, पर है तो भयंकर निराशा ही!

फिर लोगों की असह्य भीड़ हो जाने से बापू की देह ऊपर लायी गयी। देश-विदेश के दूत एवं प्रतिनिधि और सरकारी नौकर भारतीय शान्ति के सम्राट के अन्तिम दर्शन के लिए पहुँच गये थे। *('बापू की अंतिम झाँकी')*

महामानव गांधीजी

❑ जवाहरलाल नेहरू

गांधीजी को जीवन में जो पूर्णत्व मिला, वैसा शायद ही किसी देश के इतिहास में किसी को मिला हो। जिस किसी चीज को बापूजी ने स्पर्श किया, उसे मौलिकता प्राप्त हुई। वह सुवर्णमय हो गयी। गीता के सिद्धांत के अनुसार फल की अपेक्षा न करते हुए उन्होंने कार्य किया और फल उनके पीछे दौड़ता आया।

एक बड़ी कीमिया उन्होंने की

उनका दीर्घ जीवन, उस जीवन में किये कष्टदायक काम, निश्चित स्वरूप के जीवनक्रम में ही किये विलक्षण हिम्मत के प्रयोग, इस सबकी ओर देखें, तो ध्यान में आयेगा कि उनके जीवन में कहीं भी विसंवादी सुन सुनायी नहीं देते। विविध क्षेत्र का उनका कार्य मानो स्वरैक्य ही था। उनका प्रत्येक शब्द और हर हलचल मानो सुसंवादी स्वरमालिका थी। जीवन की कला उन्होंने आत्मसात् कर ली थी। जैसे-जैसे मेरा उनसे सम्पर्क बढ़ता गया, वैसे-वैसे इसकी प्रतीति होने लगी कि उनकी देह, उस देह में निवास करने वाली शक्तिमान आत्मा का कार्यवाहक साधन है। हम उनके प्रवचन सुनने लगे, उनको देखते ही उनकी देह को भूलने लगे, वे जहां बैठते वह हमें मंदिर लगने लगा और जहां चलते वह पवित्र भूमि लगने लगी।

उनकी मृत्यु में भी उज्ज्वलता और कलात्मकता थी। बापूजी जिस प्रकार का जीवन जीये उस जीवन-दृष्टि को ध्यान में लें, तो हम सर्वार्थ से कह सकते हैं कि उनकी मृत्यु आयी। इसमें कोई शक नहीं कि प्रार्थना के क्षण में मृत्यु आयी, इसका उन्हें संतोष रहा होगा। जिस एकता के लिए उन्होंने जीवनभर अविरत कार्य किया, पूरा जीवन समर्पित किया और जीवन के अंत में भी जिस निष्ठा को खोया नहीं, उस निष्ठा की परिपूर्णता के लिए उन्होंने हौतात्म्य स्वीकारा। एक निमिषभर में मृत्यु आयी। उन्होंने हमारे मन में जिस चित्र का निर्माण किया है, वह चित्र कभी मिटेगा नहीं।

पर एक उससे भी बड़ी कीमिया उन्होंने की। हमारे मन और बुद्धि की तह में जाकर उसे उन्होंने संस्कार दिये! उनके कर्तृत्व-काल में तैयार हुई पीढ़ी काल के प्रवाह में लुप्त हो जायेगी। परंतु उस पीढ़ी को उन्होंने जो सिखावन दी है, वह आगे की अनेक पीढ़ियों के लिए मार्गदर्शक सिद्ध होगी। क्योंकि गांधीजी की सिखावन भारतीय आत्मा का एक भाग बन कर रही है। वह भारत की अस्मिता है।

उनके नेत्रों में कोई 'अज्ञात' था

उस छोटे-से मनुष्य की कमजोर देह में फौलाद जैसा कुछ था। उनकी वह देह किसी भी ताकतवर शक्ति के सामने झुकी नहीं। उनके चेहरे पर खूबसूरती नहीं थी, देह पर सिर्फ एक छोटा-सा कपड़ा कमर पर लपेटा रहता, पर उनको देखते ही उनके शाही तेज से हम प्रभावित हो जाते, उनके सामने विनम्र हो जाते। और जिस समय वे कोई आदेश देते, उस समय वह मानना ही पड़ता। उसमें वे किसी को भी माफ नहीं करते। उनकी शांत, गहरी आंखें सामने वाले के अंतर को आजमा लेतीं। उनकी स्पष्ट आवाज सामने वाले के दिल में भावनात्मक प्रतिसाद उत्पन्न करती। प्रवचन करते समय उनकी मोहकता और आकर्षकता की ऐसी छाप पड़ती कि हर कोई, चाहे एक श्रोता हो या हजारों हों, उनके साथ तद्रूप हो जाता। उसका कारण यह नहीं था कि गांधीजी की वक्तृत्वशैली से या शब्दाडंबर से वे सम्मोहित हो जाते। गांधीजी की भाषा सादी, सरल है, नाहक विस्तार या अनावश्यक शब्द उसमें नहीं रहता है। लोगों पर प्रभाव तो पड़ता है उनकी संदेहरहित प्रामाणिकता और व्यक्ति-वैशिष्ट्य का! उनका प्रवचन सुनते हुए प्रतीति होती है कि इस छोटी-सी मूर्ति में प्रचंड आंतरिक सामर्थ्य भरी पड़ी है।

गांधीजी एक पहेली हैं। यह नहीं कि ब्रिटिश सरकार के लिए ही वह पहेली थे, उनके स्वकीयों और सहकारियों के सामने भी वे एक पहेली ही बन कर रहे। अन्य देशों में गांधीजी जैसे धार्मिक द्रष्टा को कहीं स्थान ही नहीं मिलता। लेकिन ऐसे धर्मात्माओं की भाशा भारत अभी भी समझ सकता है। इसीलिए गांधीजी पाप-पुण्य की, सत्य और अहिंसा की बातें बोल सके। गांधीजी अलग ही धातु के बने थे। उनके नेत्रों से हमेशा कोई 'अज्ञात' आंखें खोलकर हमें देखा करता।

उन्होंने अनुशासन दिया

गांधीजी के साहित्य या सुवचनों से भी उनके व्यक्तित्व या स्वभाव का खयाल नहीं आता। गांधीजी ने देश की जो सेवा की है, वह अभूतपूर्व है। अपने देशबांधवों के दिल में उन्होंने हिम्मत और पौरुष पैदा किया। जनता को अहिंसा और सहनशीलता की सिखावन दी। ध्येय के लिए त्याग की परिसीमा खुशी-खुशी प्राप्त करने की सिखावन दी। लोगों में स्वाभिमान पैदा किया। उनकी साफ राय थी कि धर्म चारित्र्य की मजबूत नींव है। एक बार उन्होंने कहा था, ''निर्भयता के बिना नैतिकता, धर्म और प्रेम को जीवन में कोई स्थान नहीं। सत्य या प्रेम का मार्ग भय की भावना में दिखायी नहीं देता।'' ध्येय तक पहुंचना हो तो उस कार्य की प्रतिज्ञा और भरोसा अनुशासन है। मानवीय जीवन में त्याग, अनुशासन या मनोनिग्रह के बिना दूसरी मुक्ति नहीं। अनुशासन के बिना केवल त्याग निरर्थक है, यह उनका कहना था।

उनका हास्य जितना आनंददायक था, उतना ही असरकारक भी था। उनकी वह हँसी उनके मुक्त मन की प्रतीति करवाती। उनके

स्वभाव में बालक की निष्पापता का दर्शन होता। बच्चे के स्वभाव में जो मुग्धता, मोहनीयता होती है, उसका भी उनमें अनुभव होता था। किसी भी जगह वे प्रवेश करते, उनके पदार्पण के साथ एक स्वच्छ हवा की लहर आती और वातावरण को उज्ज्वल बना देती। अपनी जीवन-पद्धति में उन्होंने अपने विचार के अनुसार जीवन-सौन्दर्य का निर्माण किया था। उनकी हर हलचल में अर्थ था, सौन्दर्य था।

पराभव में भी प्रकाशमान रहे

अपने विचार और सैद्धांतिक भूमिका के अनुसार चलने की गांधीजी की स्वतंत्र नीति थी। इस नीति से अपने जीवन-विषयक दर्शन को मोड़ देते हुए उस दर्शन का विकास वे करते थे। जो नैतिक मूल्य उन्होंने निश्चित किये थे, उनको ध्यान में रखकर ही वे अपने जीवन-विषयक दर्शन की ओर देखते थे। हर बात को और खुद को भी वे इसी मूलभूत मानक का पूर्ण मेल हुआ दिखायी देता है। उनके जीवन में जब-जब पराभव के प्रसंग आये, तब-तब हमें प्रतीति हुई कि उनका व्यक्तित्व प्रकाशमान हुआ।

करोड़ों की आकांक्षाओं की मूर्ति

खुद पर पूर्ण विश्वास, विलक्षण शक्ति की जोड़, हर एक को स्वतंत्रता और समानता प्राप्त करा देने का ध्येय, गरीबों की जीवनदृष्टि से इन ध्येय-नीतियों का उपयोग करने की मनोभूमिका, इन कारणों से सर्वसाधारण जनता गांधीजी की ओर आकर्षित हुई, जैसे लोहचुम्बक की ओर होता है।

लाखों-करोड़ों की आशा-आकांक्षाओं की गांधीजी प्रत्यक्ष मूर्ति ही थे! भारत की परिसिीति का उन्हें अंतःस्फूर्त ज्ञान था। मनुष्य के मनोविज्ञान का उनका सूक्ष्म अभ्यास था। इसलिए किसी भी क्षण किसी भी समस्या में हस्तक्षेप करने लायक उनका ज्ञान था। उनके जैसा महान क्रांतिकारी दुनिया में अद्वितीय ही माना जायेगा।

उनका ऐसा अद्वितीय व्यक्तित्व था। सर्व-साधारण नाप से या तर्कशास्त्र के रूढ़ नियमों के आधार से उनके व्यक्तित्व का मूल्यांकन करना संभव नहीं।

आमुख

गांधी, धर्मनिरपेक्षता और सांप्रदायिकता

❑ प्रो. बिपिन चंद्र

धर्मनिरपेक्षता और सांप्रदायिकता के संबंध में गांधीजी के विचारों की चर्चा करने से पहले उनके एक महान गुण को समझना जरूरी है। उनके प्रशंसक और आलोचक दोनों ही इसे भूल जाते हैं क्योंकि वे उनके विचारों को अपरिवर्तनशील, एक जगह ठहरा हुआ समझते हैं। लेकिन दरअसल उन्होंने लगातार 'सत्य के साथ प्रयोग किए' और समाज, राजनीति और सामाजिक बदलाव के बारे में उनके विचार बदलते और विकसित होते रहे। इन मामलों में उनका आचार-विचार लगातार विकासमान रहा। 1933 में उन्होंने लिखा भी : 'सत्य का शोध करते हुए मैंने कई विचारों को छोड़ दिया और कई नई चीजें सीखीं।'

यह सर्वविदित है कि गांधीजी सांप्रदायिकता के पूरी तरह खिलाफ थे और उससे लड़ते रहे। हिन्दू, मुस्लिम या सिख—सभी तरह की सांप्रदायिकता का उन्होंने विरोध किया। जनवरी, 1942 में उन्होंने लिखा, 'यह लोगों को धर्म के आधार पर बांटती है इसलिए मैं इसे पूरी तरह गलत मानता हूं।' वे सांप्रदायिकता की इस धारणा का भी विरोध करते थे कि धर्म अलग होने के कारण हिन्दुओं और मुसलमानों के राजनीतिक-आर्थिक हित अलग-अलग हैं। गांधीजी ने इस निराधार धारणा का जबरदस्त विरोध किया। 1942 में उन्होंने लिखा, 'राजस्व, सफाई, पुलिस, न्याय या सार्वजनिक सुविधाओं के इस्तेमाल में हिन्दुओं और मुसलमानों के हित कैसे टकराते हैं? धार्मिक आचार-व्यवहार में ही भेद हो सकता है, जिससे धर्मनिरपेक्ष राज्य का कोई मतलब नहीं होता।'

गांधीजी ने जोर दिया कि सांप्रदायिकता न सिर्फ राष्ट्र विरोधी है बल्कि हिन्दू सांप्रदायिकता हिन्दू धर्म विरोधी और मुस्लिम सांप्रदायिकता इस्लाम विरोधी है। उदाहरण के लिए दो राष्ट्रों के सिद्धांत के आधार पर जिन्ना के सांप्रदायिक प्रचार का जिक्र करते हुए उन्होंने अप्रैल 1940 में लिखा : 'जिन्ना और उनकी तरह सोचने वाले दूसरे लोग इस्लाम की सेवा नहीं कर रहे हैं, वे तो इस्लाम शब्द में ही निहित संदेश की गलत व्याख्या कर रहे हैं।' मार्च 1947 में उन्होंने कहा, 'मुसलमान अगर हिन्दुओं का सफाया कर दें तो वे इस्लाम की सेवा नहीं करेंगे, बल्कि ऐसा करके वे इस्लाम को नुकसान पहुंचायेंगे। और अगर हिन्दुओं को लगता है कि वे इस्लाम को नेस्तनाबूद कर सकेंगे तो वे हिन्दू धर्म को भी बर्बाद कर डालेंगे।'

धर्मनिरपेक्षता की गांधीजी की समझ संपूर्णतावादी और आधुनिक थी। किसी भी देश की तरह भारत में भी धर्मनिरपेक्षता को चार अर्थों में समझा जाता रहा है। पहला, धर्म को राजनीति में घुसपैठ नहीं करनी चाहिए, उससे राजनीति, अर्थतंत्र, शिक्षा और सामाजिक जीवन और संस्कृति का अलगाव होना चाहिए और धर्म को व्यक्ति का निजी मामला समझा जाना चाहिए। धर्मनिरपेक्षता की किसी अन्य तथाकथित भारतीय परिभाषा की बात करना, जो इसके विरोध में होगी, धर्म-निरपेक्षता की उपेक्षा करना है। धर्मनिरपेक्षता

का यह भी मतलब नहीं है कि जीवन से धर्म को खत्म कर दिया जाये या उससे शत्रुता निभाई जाये। धर्मनिरपेक्ष राज्य में धर्म को निरुत्साहित नहीं किया जाता। एक बहुधार्मिक राज्य में धर्मनिरपेक्षता का यह भी मतलब है कि राज्य को सभी धर्मों से दूरी रखनी चाहिए। इसे ही कई धार्मिक लोग इस तरह से कहते हैं कि राज्य को नास्तिकता सहित सभी विश्वासों के प्रति समान दृष्टि रखनी चाहिए।

यानी धर्मनिरपेक्षता का अर्थ है—राज्य सभी नागरिकों से समान आचरण करे और लोगों के धर्म के आधार पर उनके पक्ष अथवा विपक्ष में भेदभाव न करे। भारत में धर्मनिरपेक्षता की एक विशेष भूमिका रही है। उपनिवेशवाद के विरोध में सभी भारतीयों को एकताबद्ध करने वाली विचारधारा धर्म-निरपेक्षता रही है। एकता के इसी सूत्र में बँधकर लोगों ने राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया में भाग लिया। सांप्रदायिकता सामाजिक और राजनीतिक रूप से लोगों को बांटने वाली ताकत के बतौर सामने आयी थी। इसीलिए धर्मनिरपेक्षता का अर्थ सांप्रदायिकता का स्पष्ट विरोधी समझा गया। एक गहन धार्मिक व्यक्ति होते हुए भी गांधीजी बुनियादी रूप से पूरी तरह धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक राज्य बनाना चाहते हैं। भारत के स्वतंत्रता-वर्ष पर उन्होंने साफ कहा भी, 'राज्य तो पूरी तरह धर्मनिरपेक्ष ही होगा।' इस विषय पर लोगों में खासी गलतफहमी है। पर सच्चाई यही है, आजादी से पहले भी मौलाना अबुल कलाम की तरह गांधीजी ने भी धर्मनिरपेक्षता का वही आधार-विचार अपनाया जो राष्ट्रीय आंदोलन के अनुरूप था।

इस बात से तो सब सहमत होंगे कि धर्मनिरपेक्षता की समझ के दूसरे पहलू के मुताबिक गांधीजी का मानना था कि व्यक्ति, कांग्रेस और राज्य को सभी धर्मों का बराबर सम्मान करना चाहिए। लेकिन वे इस परिभाषा या सर्वधर्म समभाव और सभी धर्मों के प्रति तटस्थता में कोई अंतर नहीं मानते थे। मौलिक अधिकारों के बारे में मशहूर कराची प्रस्ताव को गांधीजी ने सुधार कर 1931 के कांग्रेस अधिवेशन में पेश किया था। उसमें कहा गया था, 'राज्य सभी धर्मों के प्रति तटस्थता का बरताव करेगा।' इसके अलावा वे सभी धर्मों के अनुयायियों का सम्मान तो करते ही थे, नास्तिकों का भी उतना ही सम्मान करते थे।

यह बात उनके दो नास्तिक अनुयायियों और प्रशंसकों डी. रामास्वामी और रामचंद्रराव (इनका मशहूर नाम प्रो. गोरा था) के साथ 1940 के उनके साक्षात्कारों में प्रकट होती है। के. जी. मशरूवाला ने 1950 में एक बात की ओर इशारा किया। वे गांधीजी के निकटतम सहयोगियों में से थे। उन्होंने कहा है कि गांधीजी ने अपनी मान्यता 'ईश्वर ही सत्य है' को बदलकर 'सत्य ही ईश्वर है' कर दिया। इसके चलते 'सभी धर्मों की बिरादरी में नास्तिकों को भी बराबर जगह देने में सुविधा हुई। अगर नास्तिक लोग सत्य को सर्वोच्च लक्ष्य मान लेते हैं तो सर्वधर्म समभाव में आस्तिकों के बराबर ही जगह उन्हें भी मिल जाती है।'

जहां तक धर्मनिरपेक्षता के तीसरे पहलू की बात है तो कराची प्रस्ताव में यह भी कहा गया था कि आजाद भारत में 'सभी नागरिकों को मत की आजादी होगी और उन्हें स्वतंत्रता-पूर्वक अपने धर्म का आचार-प्रचार करने का अधिकार होगा।' कानून की नजर में सभी नागरिक जाति, धर्म या लिंग का खयाल किये बगैर बराबर होंगे। धर्म, जाति, पंथ या लिंग के आधार पर किसी नागरिक के साथ 'सरकारी नौकरी, पद या सम्मान और व्यवसाय या पेशे के मामले में' कोई भेदभाव नहीं किया जायेगा।

गांधीजी अक्सर कहा करते थे कि राजनीति से धर्म को अलग नहीं किया जा सकता। तमाम धर्मनिरपेक्षता विरोधी या धर्मनिरपेक्षता की सार्वभौमिक परिभाषा पर हमला करने वाले गांधीजी की इसी बात को लेकर उनके और जवाहरलाल नेहरू के बीच फर्क करते हैं। उनका कहना है कि धर्म और राजनीति में अलगाव संबंधी धर्मनिरपेक्षता की परिभाषा गांधीजी को स्वीकार नहीं थी।

इसलिए जीवन-भर वे धर्म और राजनीति के बीच घनिष्ठ संबंध पर जोर देते रहे। उनकी देशभक्ति, सार्वजनिक और राजनीतिक क्षेत्र में उनके काम, उनकी गहरी सामाजिक प्रतिबद्धता और नैतिकता का गहन बोध—ये सब उनके गंभीर राजनीतिक विश्वासों पर आधारित थे। लेकिन उनके मूलय धर्म से अर्जित थे। अपनी आत्मकथा, 'सत्य के साथ मेरे प्रयोग', के अंत में उन्होंने कहा है 'सत्य के प्रति मेरा समर्पण ही मुझे राजनीति के क्षेत्र में ले आया...। जो लोग कहते हैं कि राजनीति से धर्म का कोई लेना-देना नहीं है वे धर्म का अर्थ नहीं समझते हैं।'

इस मामले में गांधीजी के विचारों को स्पष्ट रूप से समझने के लिए हमें यह जानना होगा कि गांधीजी धर्म का क्या मतलब समझते थे। धर्म शब्द का प्रयोग अक्सर उन्होंने दो अलग-अलग अर्थों में किया है एक तो संप्रदाय के संकीर्ण अर्थ में मसलन हिन्दू धर्म, इस्लाम धर्म, ईसाई धर्म, सिख धर्म इत्यादि। दूसरे, धर्म के पारंपरिक भारतीय अर्थ में अर्थात वह ऐसी नैतिक संहिता है जो लोगों के जीवन और सामाजिक व्यवस्था को चलाती है। जब वे कहते थे कि राजनीति को धर्म के आधार पर चलाना चाहिए तो साफ तौर पर उनका आशय होता था कि इसकी नैतिक बुनियाद धर्म या आचार संहिता होनी चाहिए।

इसे ही आमतौर पर गांधीजी सत्य या अहिंसा भी कहा करते थे। धर्म से उनका आशय इसका सांप्रदायिक या संकीर्ण रूप नहीं था। वे इसका अर्थ तबकाई या संकीर्ण विश्वास भी नहीं समझते थे। जब भी उन्होंने कहा कि धर्म के बगैर राजनीति नहीं हो सकती तो उन्होंने इस बात को स्पष्ट कर दिया। उदाहरण के लिए चार फरवरी 1940 को उन्होंने एक सवाल का जवाब देते हुए कहा 'सही बात है कि मैं अब भी राजनीति को धर्म से अलग करके देख नहीं पाता। असल में तो धर्म हमारी सारी गतिविधियों में शामिल होना चाहिए। धर्म से मेरा मतलब संकीर्णता नहीं है। इसका मतलब है कि ब्रह्माण्ड को चलाने वाली नैतिक शक्ति में मेरा विश्वास है...। यह धर्म हिन्दू धर्म, इस्लाम, ईसाइयत आदि से ऊपर है।'

इससे पहले दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने कहा था 'धर्म से मेरा मतलब औपचारिक या रस्मी धर्म नहीं है। यह सभी धर्मों की अंतर्धारा है जो हमें बनाने वाले का साक्षात्कार कराता है।' इसी तरह मई 1920 में उन्होंने लिखा, 'धर्म को राजनीति में लाकर मैं अपने और अपने दोस्तों के साथ प्रयोग करता रहा। धर्म से मेरा मतलब क्या है इसकी व्याख्या करने की इजाजत दीजिए। इसका मतलब हिन्दू धर्म नहीं है जिसे मैं सभी धर्मों से ऊपर मानता हूँ। इसका मतलब ऐसा धर्म है जो हिन्दू धर्म से भी ऊपर है, जो व्यक्ति के स्वभाव को ही बदल देता है।'

ठीक-ठीक कहें तो राजनीतिक और सामाजिक जीवन में धर्म का मतलब नीति होता है या जीवन का नैतिक घटक होता है। अगस्त 1920 में उन्होंने इसे ही ऐसे कहा कि इसका सारा उद्देश्य 'राजनीतिक जगत में आध्यात्मिक जीवन की व्यावहारिकता' का भान लोगों को कराना है। गांधीजी सांप्रदायिक या 'नामधारी' धर्मों के मामले में भी धार्मिक भेदभाव को बहुत महत्त्व नहीं देते थे। उनका कहना था कि 'सभी धर्मों की बुनियादी नैतिक मान्यताएं एक ही हैं।' यही नीति या इसी नैतिक अर्थ में धर्म राजनीति का अभिन्न अंग होना चाहिए। धर्म और नैतिकता को एक मानकर ही उन्होंने नवंबर 1924 में लिखा, 'धर्म के बगैर राजनीति की मैं कल्पना नहीं कर सकता। धर्म का मतलब अंधविश्वास या अंधश्रद्धा नहीं है। वह धर्म तो नफरत और लड़ाई को जन्म देता है। मेरा धर्म सहिष्णुता का सार्वभौमिक धर्म है। नैतिकताहीन राजनीति से परहेज करना चाहिए।'

महत्त्व की बात यह है कि 1940 के दौरान उन्होंने धर्म और राजनीति के आपसी रिश्ते के बारे में अपनी भाषा बदलनी शुरू कर दी। उन्हें लगा कि सांप्रदायिक राजनीति के प्रचार और सांप्रदायिक विभाजन को बढ़ावा देने के लिए, धर्म आधारित राज्य की मांग के लिए, द्विराष्ट्र सिद्धांत के प्रचार के लिए सांप्रदायिक लोग अब इस्लाम या हिन्दू धर्म या सिख धर्म पर खतरे का हल्ला मचा रहे हैं। पहले वे हिन्दुओं, मुसलमानों या सिखों के हितों पर खतरे का नारा दिया करते थे। अब सांप्रदायिक लोग धार्मिक विश्वासों की व्यवस्था से जुड़ाव का उपयोग कर रहे हैं। अब वे धर्म के संगठित रूप, सांप्रदायिक रूप का इस्तेमाल कर रहे हैं। इसे ही के. जी. मशरूवाला ने 'नामधारी धर्म' कहा है। अब धर्म का अर्थ नीतिशास्त्र नहीं रह गया बल्कि इसका मतलब हिन्दूवाद, इस्लाम, सिख इत्यादि हो गया है।

जब गांधीजी ने देखा कि द्विराष्ट्र के सिद्धांत और धर्म आधारित मांग के लिए सांप्रदायिक तत्त्वों हिन्दू, इस्लाम और सिख धर्म पर खतरे की दुहाई दे रहे हैं तो धर्म को लेकर उनकी भाषा बदलने लगी। 1940 के दौरान उन्होंने कहना शुरू किया कि सांप्रदायिक अर्थ में धर्म और राजनीति को अलगाया जाना चाहिए। धर्म को शुद्ध रूप से व्यक्तियों का निजी मामला समझा जाना चाहिए। बाद के वर्षों में उनका इस विषय पर स्तर निरंतर तीखा होता गया। 1946 में गांधीजी ने एक धर्म प्रचारक से कहा, 'अगर मैं तानाशाह होता तो धर्म और राजनीति अलग-अलग होते। इसके लिए मैं जान तक दे देता।'

उन्होंने यह भी कहा कि 'किसी भी सांप्रदायिक शिक्षा संस्थान को राज्य का संरक्षण नहीं मिलना चाहिए।' राज्य अनुदानित स्कूलों में उन्होंने पाठ्यक्रम में धार्मिक शिक्षा का विरोध ही नहीं किया बल्कि यहां तक कहा कि 'अगर समूचे समुदाय का धर्म एक ही हो' तब भी वे इसका विरोध करेंगे। 1947 में उन्होंने डॉ. जाकिर हुसैन से कहा : 'मैं इस बात से सहमत नहीं हूं कि राज्य को धार्मिक शिक्षा देनी चाहिए... अगर ऐसा करने की कोशिश की जायेगी तो नतीजे बहुत बुरे होंगे। जो लोग धार्मिक शिक्षा देना चाहते हैं वे अपने-आप ऐसा कर सकते हैं। हां, यह जरूर है कि इसे कानून-व्यवस्था या नैतिकता के लिए नुकसानदेह नहीं होना चाहिए। सरकार महज ऐसी नैतिक शिक्षा दे सकती है जो सभी धर्मों के साझा सिद्धांतों पर आधारित हो और जिस पर सभी सहमत हों। दरअसल, हमारा राज्य धर्मनिरपेक्ष होना चाहिए।'

इसी तरह पहले फरवरी में उन्होंने लिखा था, 'मैं नहीं जानता कि राज्य को धार्मिक शिक्षा से लगाव होना चाहिए। मुझे लगता है कि धार्मिक शिक्षा की चिन्ता केवल धार्मिक संस्थाओं को करने देना उचित है।' इस संदर्भ में गांधीजी ने धर्म शब्द के दो प्रयोगों में फर्क भी किया। उन्होंने यह तो कहा कि 'सभी धर्मों का बुनियादी नीतिशास्त्र एक ही है', लेकिन यह भी कहा कि 'धर्म और नैतिकता में घालमेल ठीक नहीं है।' इसके बाद उन्होंने स्पष्ट किया 'जब मैं धर्म कह रहा हूं तो मेरे दिमाग में बुनियादी नीतिशास्त्र नहीं बल्कि संप्रदाय के नाम पर चलने वाला कारोबार है।'

एक और वजह के चलते गांधीजी मानते

"साम्प्रदायिकता, हठधर्मिता और उनकी वीभत्स वंशधर धर्मान्धता इस सुन्दर पृथ्वी पर बहुत समय तक राज कर चुकी है। वे पृथ्वी को हिंसा से भरती रही हैं, मानवता को बार-बार रक्त से नहलाती रही हैं, सभ्यताओं को विध्वंस करती रही हैं और दुनिया को निराशा के गर्त में डालती रही हैं। यदि ये वीभत्स तथा दानवी न होतीं तो मानव-समाज आज कहीं अधिक की अवस्था से उन्नत हो गया होता। या अब उनका समय आ गया है और मैं आशा करता हूं आंतरिक रूप से इस सभा के कि आज सुबह सम्मान में जो घंटा ध्वनि हुई है, वह समाज में धर्मान्धता का, तलवार या लेखनी के द्वारा होने वाले उत्पीड़नों का तथा एक ही लक्ष्य की ओर अग्रसर होने वाले मानकों की पारम्परिक कटुताओं का मृत्यु-निनाद सिद्ध हो।" *(शिकागो वक्तृता)*

–स्वामी विवेकानन्द

थे कि धर्म को 'शुद्ध रूप से निजी मामला' होना चाहिए। फरवरी 1947 में उन्होंने कहा कि 'असल में धर्म तो उतने हैं जितने लोग हैं। हरेक आदमी की ईश्वर की धारणा बाकी सबसे अलग होती है।' अगस्त में उन्होंने दुबारा कहा कि 'भारत संभवतः पुरानी दुनिया का एकमात्र देश था, जिसने सांस्कृतिक लोकतंत्र को मान्यता दी। उन्होंने कहा कि ईश्वर तक पहुंचने के कई रास्ते हैं, लेकिन मंजिल एक है क्योंकि ईश्वर एक ही है। दरअसल, रास्ते उतने ही हैं जितने दुनिया में व्यक्ति हैं।' इससे पिछले वर्ष वे कह चुके थे 'दुनिया के सभी सांप्रदायिक धर्मों, मसलन ईसाइयत, हिन्दूवाद, इस्लाम, जरथुस्ट धर्म में जो कुछ भी अच्छा है उसे ग्रहण करना चाहिए और अपनी पसंद को सीमित किये बगैर अपना धर्म बनाना चाहिए।'

पहले भी उन्होंने 'हिन्द स्वराज' में लिखा था, 'दुनिया में जितने भी व्यक्ति हैं वास्तव में उतने धर्म हैं।' दूसरे शब्दों में हरेक व्यक्ति अपने धर्म का चुनाव अपने विचार, अपनी बुद्धि और अपने विवेक से करता है। इसे यों भी कह सकते हैं कि धर्म निजी मामला होना चाहिए, राज्य या समाज इसे थोप नहीं सकता, सांप्रदायिकता और धर्मनिरपेक्षता के बारे में गांधीजी के चिन्तन के कुछ और पहलू भी गौरतलब हैं। सभी तरह की सांप्रदायिकता को वे बुरा समझते थे, लेकिन धार्मिक बहुसंख्यकों की सांप्रदायिकता को खासतौर पर बुरा मानते थे। इसलिए कि 'उन्हें अपनी ताकत का नशा होता है।'

उन्होंने अल्पसंख्यक सांप्रदायिकता की आलोचना तो की, पर अल्पसंख्यकों की हैसियत के कारण उनके प्रति उनका दृष्टिकोण समर्थनकारी और संरक्षणपरक था। उदाहरण के लिए उन्होंने अगस्त 1947 में कहा : 'भारत में अगर किसी अल्पसंख्यक को उसकी धार्मिक पहचान के आधार पर छोटा समझा जाता है तो वह यही कहेगा कि यह भारत तो उसके सपनों का भारत नहीं है।' उन्होंने अल्पसंख्यकों की पीड़ा को समझने और उन्हें राहत देने की हरचंद कोशिश की। खासतौर पर वे विभाजन के बाद मुसलमानों की तकलीफ, अहसास और समग्र मनोदशा के प्रति बहुत संवेदनशील रहे। उन्होंने उनकी तकलीफ और चिन्ता को समझा।

गांधीजी ने जिस तरह धर्म को राजनीति से अलगाने पर जोर दिया उसके बारे में कहा जा सकता है कि वह बहुत कुछ उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोप में धर्म के लौकिकीकरण की कोशिशों से मिलता-जुलता है। धर्म के लौकिकीकरण की इस कोशिश के अलावा उन्होंने धर्म में विवेक का इस्तेमाल करने की भी जोरदार वकालत की। उनका कहना था कि विवेक और नीति को परंपरा और शास्त्र के ऊपर स्थान देना चाहिए, न केवल सांसारिक मामलों में बल्कि धार्मिक मामलों में भी। अंतिम निर्णायक कठमुल्लापन की बजाय विवेक को होना चाहिए और किसी भी मनुष्य को तर्करहित धार्मिक तत्त्व या धार्मिक संस्थान या परंपरा को स्वीकार नहीं करना चाहिए। इस सवाल पर भी उनके अनंत उद्धरण दिये जा सकते हैं। उदाहरण के लिए उन्होंने जुलाई 1920 में कहा था 'मैं ऐसी किसी भी धार्मिक मान्यता को नहीं मानता जो विवेक-सम्मत न हो और अनैतिक हो।' जनवरी 1921 में कहा 'शैतान ने हमेशा शास्त्रों की मदद ली है। लेकिन शास्त्र विवेक और सत्य से ऊपर नहीं हो सकते हैं।'

फिर फरवरी 1924 में कहा 'किसी भी धर्म की किसी भी मान्यता को विवेक के इस युग में अगर सार्वभौमिक मान्यता चाहिए तो उसे विवेक और सार्वभौमिक न्याय की कसौटी पर खरा उतरना होगा। गलती को माफ नहीं किया जा सकता, अगर दुनिया भर के शास्त्र उसके समर्थन में खड़े हो जायें तब भी।' अक्टूबर 1927 में उनके विचार थे 'हमें यह मान लेने की बेवकूफी नहीं करनी चाहिए कि संस्कृति में जो कुछ भी लिखा है और शास्त्रों में जो भी छपा है उसे मानने के लिए हम मजबूर हैं। नीति के मौलिक सिद्धांतों के विरोध में जो कुछ भी है और जो शिक्षा प्राप्त विवेक से टकराता है उसे शास्त्र नहीं कहा जा सकता चाहे वह जितना भी प्राचीन हो।' दिसंबर 1936 में फिर कहा 'मैंने गीता सहित हरेक शास्त्र को परखा है। अपने विवेक पर मैं किसी भी ग्रंथ को हावी नहीं होने दे सकता।'

1920 के दशक में गांधीजी धार्मिक शब्दावली में ही सोचते थे। तब भी उनकी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक मान्यताएं आधुनिक धर्मनिरपेक्ष, आर्थिक, राजनीतिक, नैतिक और सामाजिक सिद्धांतों पर आधारित थीं। वे कभी धार्मिक या पवित्र आधारों पर नहीं बनी थीं। एक बार भी उन्होंने यह नहीं कहा कि आजादी की लड़ाई धार्मिक कर्तव्य है या गोरे लोगों के खिलाफ है। उन्होंने राष्ट्रवाद की वैचारिक परिभाषा या इसके कार्यक्रमों में धर्म का इस्तेमाल नहीं किया। उन्होंने शासकों की निन्दा कभी उनके धर्म या उनके रंग के कारण नहीं की। शासकों पर हमला करने के लिए उन्होंने उनकी ईसाइयत का इस्तेमाल नहीं किया। खिलाफत के अलावा कभी उन्होंने किसी धार्मिक मुद्दे पर आंदोलन नहीं किया, न ही राजनीतिक मांग के रूप में उसे चुना।

चरमपंथी हिन्दू सांप्रदायिक गांधीजी को मुसलमान समर्थक कहकर निन्दा करते थे। वे जिसे 'हिन्दू राष्ट्र' मानते थे, गांधीजी को उसका गद्दार कहते थे। दूसरी और मुसलमान संप्रदायवादी उन्हें मुसलमानों और मुसलमान का दुश्मन कहकर उनकी आलोचना करते थे। वे कहते थे कि गांधीजी मुसलमानों को गुलाम बनाना चाहते हैं। उनकी तहजीब को दबा रहे हैं, हिन्दूवाद को फिर से जिन्दा कर रहे हैं और हिन्दू-राज की स्थापना करना चाहते हैं।

1939 में आर.एस.एस. के सर संघचालक एम.एस. गोलवलकर ने लिखा 'घोर आश्चर्य की बात है कि गद्दारों को राष्ट्रीय नेताओं की गद्दी सौंपी जा रही है और देशभक्तों को भुला दिया गया है।' गांधीजी के संबंध में स्पष्ट रूप से गोलवलकर ने 1947 में कहा 'जो कहते थे कि हिन्दू-मुसलमान एकता के बगैर स्वराज नहीं, उन्होंने हमारे समाज से सबसे बड़ी गद्दारी की है। प्राचीन और महान मनुष्यों की जीवनेच्छा हनन का घोर अपराध उन्होंने किया है।' उन्होंने गांधीजी पर यह कहने का आरोप भी लगाया कि 'इसे (हिन्दू-मुसलमान एकता) हासिल

करने का सबसे आसान रास्ता यह है कि सभी हिन्दू मुसलमान बन जाएं।'

इसी तरह 1947 में गोलवलकर ने गांधीजी और अन्य कांग्रेसी नेताओं पर आरोप लगाया कि वे हिन्दुओं से 'मुसलमानों की गंडागर्दी और उत्पीड़न को अनदेखा करने और उसके सामने समर्पण करने की बात कह रहे हैं। दरअसल, उनसे (हिन्दुओं से) कहा जा रहा है कि मुसलमानों ने जो कुछ अतीत में किया और वर्तमान में जो तुम्हारे साथ कर रहे हैं, उसे भूल जाओ। अगर मंदिर में तुम्हारी पूजा, सड़कों पर भगवान के तुम्हारे जुलूस से मुसलमान चिढ़ते हैं तो ऐसा मत करो। अगर वे तुम्हारी औरतों और बेटियों को उठा रहे हैं तो उठाने दो। उन्हें रोको मत। इससे हिंसा फैलेगी।' इसी तरह के शब्दों में गांधीजी की आलोचना अन्य हिन्दू सांप्रदायिक नेताओं ने भी बार-बार की।

मुसलमान संप्रदाय-वादी भी पीछे नहीं रहे। 1938 में मुसलिम लीग में अध्यक्षीय भाषण देते हुए मुहम्मद अली जिन्ना ने गांधीजी के बारे में कहा कि 'कांग्रेस को हिन्दूवादी के पुनरुत्थान के हथियार में बदल देने के लिए वे ही जिम्मेदार हैं। उनका आदर्श हिन्दू धर्म को फिर से जिन्दा करना और इस देश में हिन्दी राज की स्थापना करना है।' 1940 में उन्होंने अलीगढ़ के छात्रों से कहा, 'मिस्टर गांधी हिन्दू राज के मातहत मुसलमानों से गुलामी कराना चाहते हैं।' इससे भी आगे बढ़ कर जिन्ना के सचिव और उनकी जीवनी लिखने वाले जेड. ए. सुलेरी ने बहुप्रचारित किताब 'माई लीडर' में लिखा कि 'गांधीजी' इस्लाम के दुश्मन' थे जबकि जिन्ना 'इस्लाम के सबसे महान निर्माता' थे।''

इससे बड़ी विडंबना क्या हो सकती है कि घृणा के उत्तेजक प्रचार और उससे पैदा हुए सांप्रदायिक माहौल ने आखिर महात्मा की जान ले ली। इसका कोई खास महत्त्व नहीं है कि किसने गोली चलायी और हत्यारा किस विशेष पार्टी या समूह या धार्मिक समुदाय से जुड़ा हुआ था।

'अंतिम जन', वर्ष-1, अंक-7, अगस्त 2012 से

दस्तावेज

गांधीजी, कांग्रेस और विभाजन

❑ शिव कुमार मिश्र

पाकिस्तान के बाबा-ए-कौम, कायद-ए-आजम मुहम्मद अली जिन्ना ने 11 अगस्त, 1947 को संविधान सभा में अपने ऐतिहासिक उद्‌बोधन में कहा था, ''...आप लोग आजाद हैं, आप लोग अपने मंदिरों में जाने के लिए आजाद हैं, आप लोग अपनी मस्जिदों में या पाकिस्तान के राज्य में किसी भी अन्य पूजा स्थल में जाने के लिए आजाद हैं।...आप किसी भी धर्म, जाति या मजहब के हों, उसका हुकूमत चलाने से कोई ताल्लुक नहीं है।...हम उस दौर की शुरुआत कर रहे हैं, जब न कोई भेदभाव होगा, न ही दो समुदायों में कोई फर्क किया जायेगा, न ही जाति या मजहब में अंतर समझा जायेगा। हमारी शुरुआत इस बुनियादी उसूल से की जा रही है कि हम एक राज्य के समान नागरिक हैं। इंग्लैंड के लोगों को भी वक्त के साथ हालात की हकीकत का अहसास करना पड़ा था और सरकार द्वारा डाली गयी जिम्मेदारियां निभानी पड़ी थीं।...आज आप ईमानदारी से कह सकते हैं कि रोमन कैथोलिकों और प्रोटेस्टेंटों का वजूद नहीं है। अब तो हर व्यक्ति एक नागरिक है, ग्रेट ब्रिटेन का समान नागरिक...सभी लोग एक राष्ट्र के सदस्य हैं।''

कायद-ए-आजम का कथन किस कदर आश्चर्यजनक था। यदि साम्प्रदायिक सद्‌भाव और हिन्दू-मुस्लिम एकता में उनका इतना ही भरोसा था तब मुल्क के बंटवारे का क्या औचित्य था? शायद उभरते हुए घटना प्रवाह के चक्रवात ने उन्हें अनूठे अहसास से भर दिया था क्योंकि देश-विभाजन के दिन करीब आने पर अर्थात् घर-बार, खेत-खलिहान, पुरखों के गांव छोड़कर अजनबी धरती पर बने शरणार्थी शिविरों में रहने के लिए भागने वाले हजारों-हजार बेकसूरों के कत्ल-ओ-गारत से पहले के अविभाजित भारत की पैरोकारी कर रहे थे। पाकिस्तान के मनोनीत राष्ट्राध्यक्ष का वक्तव्य जारी था, ''हमें अपने सामने आदर्श रखना चाहिए जिसके मुताबिक आप देखेंगे कि वक्त के साथ, हिन्दू-हिन्दू नहीं रहेंगे और मुसलमान-मुसलमान नहीं रहेंगे। धार्मिक अर्थों में नहीं क्योंकि वह तो इन्सान की निजी आस्था की बात है, बल्कि राज्य के नागरिक के रूप में, राजनीतिक अर्थों में।... जैसा कि राजनीतिक भाषा में कहा जाता है, मैं हमेशा बिना किसी पूर्वाग्रह या बुरे इरादे के, किसी के प्रति पक्षपात के बिना इंसाफ और ईमानदारी के उसूल के मुताबिक काम करूँगा। मेरा निर्देशक सिद्धांत होगा—न्याय और पूरी तरह निष्पक्षता। मुझे यकीन है आपके समर्थन और सहयोग से मैं पाकिस्तान को दुनिया का महानतम राष्ट्र बनाने की उम्मीद कर सकता हूँ।''

आज पाकिस्तान के पास कायद-ए-आजम का रिकार्ड किया भाषण तक नहीं है, जिसे जिन्ना साहब ने 11 अगस्त को संविधान सभा में कहा था। आज पाकिस्तान सरकार ने अपने बाबा-ए-कौम के ऐतिहासिक भाषण की मांग भारत से दोहराई है; जिसे भारत सरकार ने उन्हें भेजा है।

जब जिन्ना और उनकी मुस्लिम लीग साम्प्रदायिक उन्माद की छुरी पर देश-विभाजन का कुतर्क रच रही थी, तब ही शायद मुसलमान देश-विभाजन की, जिन्ना की, मांग का प्रतिरोध कर रहे थे। इनमें मौलाना अबुल कलाम आजाद, अल्लाह बख्श, सरहदी गांधी खान अब्दुल गफ्फार खाँ जैसे राष्ट्रभक्त मुसलमान थे। हालांकि जिन्ना की निजी जिन्दगी में धर्म की कोई जगह नहीं थी। उन्हें अपनी पसंदीदा व्हिस्की से बहुत प्यार था और कुछ विवरणों के मुताबिक वह हैम-सैंडविच (सूअर के गोश्त से बनी) भी

खाते थे। विवाह भी पारसी महिला से रचाया था। इसी तरह नवाबजादा लियाकत अली खाँ की बेगम राना पंत कुमायुंनी ईसाई थी।

मौलाना अबुल कलाम आजाद सच्चे अर्थों में देशभक्त थे और भारत की संयुक्त राष्ट्रीयता के प्रबल समर्थक भी। मौलाना ने देश-विभाजन के मुस्लिम लीग के कुतर्क का खंडन करते हुए भारतीय इतिहास, परंपरा और सद्भाव का उल्लेख करते हुए 1940 में कांग्रेस के अध्यक्षीय भाषण में कहा था कि यह हिन्दुस्तान के इतिहास की नियति थी कि बहुत सारी नस्लें और संस्कृतियां उसकी तरफ खींचती चली आयीं। बहुतों ने अतिथियों के स्वागत में बिछी हुई इस सरजमीं में अपना ठौर बनाया और बहुत सारे काफिले आकर यहां रुकते रहे...। हिन्दुओं और मुसलमानों के ग्यारह सदी के साझा इतिहास ने अपनी साझा उपलब्धियों से इसकी संस्कृति को समृद्ध बनाया है। हमारी भाषा, हमारी कविता, हमारा साहित्य, हमारी संस्कृति, हमारी कला, हमारा पहनावा, हमारे तौर-तरीके, हमारे रीति-रिवाज और हमारे जीवन में घटने वाली असंख्य घटनाएं और हरेक चीज हमारे साझा प्रयासों की मुनादी करते हैं...। इन हजारों सालों की हमारी साझा जिन्दगी ने हमें एक साझी राष्ट्रीयता के रूप में ढाला है। चाहे हम इसे पसंद करें या न करें। हम एक भारतीय राष्ट्र बन चुके हैं, जो एक है और अविभाज्य है। कोई भी अति कल्पना या नकली योजना इस एकता को विखंडित नहीं कर सकती।

मौलाना के स्वर में इतिहास बोल रहा था। देश-विभाजन के साठ साल बाद मौलाना के भविष्य-कथन की सच्चाई को सरहद के दोनों और परखा जा रहा है, सराहा जा रहा है। तब गांधी-नेहरू और कांग्रेस ने मौलाना आजाद के नेतृत्व में राष्ट्रीय एकता की राह रोशन की थी और महात्मा गांधी ने मौलाना के संबंध में 1940 में कहा था कि मुझे मौलाना अबुल कलाम आजाद से 1920 में मिलने और देश तथा राष्ट्रीय सेवा के उनके कार्यों को देखने का सौभाग्य प्राप्त है। इनसे बेहतर इस्लाम को ठीक प्रकार से समझने वाला कोई नहीं। वह अरबी के महान पंडित है। इनका राष्ट्र-प्रेम उसी प्रकार हठ है जिस प्रकार इस्लाम में विश्वास। आज वे इंडियन नेशनल कांग्रेस के अध्यक्ष हैं। यह बात बड़ी सार्थक है तथा भारतीय राजनीति के किसी विद्यार्थी को इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

मौलाना की नजर में हिन्दू-मुस्लिम एकता ही राष्ट्रीय एकता का प्रतिबिम्ब है। वह कहते थे कि आज हमें भारत में न किसी हिन्दू संगठन की आवश्यकता है, न मुस्लिम संगठन की। हमें केवल एक संगठन की आवश्यकता है, और वह है इंडियन-नेशनल-कांग्रेस।

मौलाना आजाद ने 'अल-हिलाल' नामक अखबार में 1911 में राष्ट्रीय एकता का अनुशीलन करते हुए लिखा था कि ''आज यदि एक फरिश्ता आसमान की बदलियों से उतर आये और दिल्ली की कुतुबमीनार पर खड़े होकर ऐलान कर दे कि स्वराज चौबीस घंटे के अंदर मिल सकता है, बशर्ते भारत हिन्दू-मुस्लिम एकता से हट जाए तो मैं स्वराज की मांग से तो पीछे हट जाऊँगा। लेकिन इससे (हिन्दू-मुस्लिम एकता) पीछे नहीं हटूँगा। क्योंकि यदि स्वराज मिलने में देर हुई, तो इससे भारत को नुकसान होगा, लेकिन यदि हमारी एकता भंग हुई तो इससे मानव जाति का नुकसान होगा।''

हिन्दू-मुस्लिम एकता, मौलाना की जिन्दगी का अंतिम लक्ष्य था। उनका राष्ट्रवाद और इस्लाम एक-दूसरे का पूरक तथा सहयोगी था। मौलाना अबुल कलाम आजाद का कथन था कि मैं मुसलमान हूं तथा गर्व से कहता हूं कि मैं मुसलमान हूं। इस्लाम की तेरह सौ वर्षों की शानदार परम्पराएं मु. अपने पूर्वजों से मिली हैं। मैं तैयार नहीं कि इसका छोटे-से-छोटा अंश भी बेकार होने दूं। इस्लाम की शिक्षा, इस्लाम का इतिहास, इस्लाम की सभ्यता, इस्लाम की कला मेरा धन है। मेरा कर्तव्य है कि इसकी रक्षा करूं। मुसलमान होने से मैं धार्मिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में अपना एक विशेष व्यक्तित्व रखता हूं और मैं सहन नहीं कर सकता कि इसमें कोई हस्तक्षेप करे। परंतु इन तमाम अनुभूतियों के साथ मैं एक और विचार भी रखता हूं, जिसे मेरे जीवन के तथ्यों ने जन्म दिया है, इस्लाम की आत्मा मुझे इससे नहीं रोकती। वह इस राह में मेरी अगवानी करती है। मैं गौरव के साथ महसूस करता हूं कि मैं हिन्दुस्तानी हूं। मैं हिन्दुस्तान की मिली-जुली राष्ट्रीयता का भाग हूं, जिसे विभाजित नहीं किया जा सकता। मैं इस संयुक्त राष्ट्रीयता का एक ऐसा भाग हूं, जिसके बिना इसकी महानता अधूरी रह जाती है। मैं इस सिद्धांत पर कार्यशील हूं। मैं अपने इस दावे से कभी नहीं हट सकता। यह था मौलाना अबुल कलाम आजाद का राष्ट्रवाद।

मुहम्मद अली जिन्ना मिली-जुली राष्ट्रीयता के दुश्मन और दो राष्ट्र सिद्धांत के पैरोकार थे। जिन्ना की तरह 'हिन्दुत्व' के रचयिता और हिन्दू महासभा के अगुवा नेता सावरकर भी 'हिन्दू राष्ट्र' और 'मुस्लिम कौम' की शब्दावली दोहराकर देश-विभाजन की राह हमवार कर जिन्ना और उनकी मुस्लिम लीग के सहयोगी बने हुए थे। इस बिन्दु पर हिन्दू साम्प्रदायिकता मुस्लिम साम्प्रदायिकता से होड़ कर रही थी तब गांधी और कांग्रेस साम्प्रदायिक सद्भाव, सहिष्णुता का पथ-प्रवर्तन करना चाहते थे।

कायद-ए-आजम फरमाते थे कि हिन्दुस्तान की समस्या महज एक अंतर-साम्प्रदायिक समस्या नहीं बल्कि एक अंतर्राष्ट्रीय समस्या है और इसका समाधान इसी रूप में किया जाना चाहिए। यह महज एक ख्वाब है कि हिन्दू और मुसलमान एक साझी राष्ट्रीयता विकसित कर सकते हैं...और इस एकीकृत हिन्दुस्तानी राष्ट्र का गलत विचार अपनी सीमाओं को पार कर गया है। यह हमारी समस्या का सबसे बड़ा कारण है और अगर हम वक्त रहते अपनी कार्रवाइयों को संबोधित करने में नाकामयाब रहे तो यह देश को विखंडन की ओर ले जायेगा। हिन्दू और मुसलमान दो विभिन्न धार्मिक दर्शनों,

सामाजिक रीति-रिवाजों और साहित्य से ताल्लुक रखते हैं। उनमें रोटी-बेटी का रिश्ता नहीं है और हकीकत में वे दो अलग-अलग सभ्यताओं से ताल्लुक रखते हैं जो परस्पर विरोधी विचारों और मान्यताओं पर आधारित हैं। जीवन के बारे में और जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण बिल्कुल अलग-अलग है।

मौलाना अबुल कलाम आजाद ने साझी राष्ट्रीयता का पथ प्रवर्तन किया था, तब जिन्ना मुस्लिम लीग के लाहौर अधिवेशन (23 मार्च, 1940) में पाकिस्तान की मांग पेश कर रहे थे।

मौलाना आजाद ने कांग्रेस अध्यक्ष की हैसियत से 8 अगस्त, 1940 को जिन्ना के नाम तार भेजा। जिन्ना ने अपने जीवन का कटुतम उत्तर मौलाना को दिया कि 'मैं आपसे पत्र-व्यवहार या किसी प्रकार की बातचीत करने से इनकार करता हूं क्योंकि आपने सारे देश के मुसलमानों का विश्वास खो दिया है। क्या आप यह महसूस नहीं कर सकते कि आप कांग्रेस के नुमाअयसी (शो-ब्वाय) मुस्लिम अध्यक्ष यह सिद्ध करने के लिए हैं कि कांग्रेस राष्ट्रीय संस्थान है ताकि दूसरे देशों को धोखा दिया जा सके। आपने अब तक हद से ज्यादा लीग का विरोध किया है। आपको मालूम है कि आप बिल्कुल असफल रहे हें। अब इन बातों को छोड़ दीजिए।'

जिन्ना का लहज़ा तल्ख था और तल्खी विवेक पर हावी हो गयी थी। जिन्ना अभिजात, मध्यमवर्गीय संस्कार छोड़कर तलछट भाषा-शैली का उपयोग कर आत्म-मुग्धता के लोक में जी रहे थे।

भारत माता का कलेजा चाक करने के लिए जिन्ना ने कलकत्ता में 16 अगस्त, 1946 को 'डायरेक्ट एक्शन डे' (सीधी कार्रवाई) का सहारा लिया। दसियों हजार लोग कलकत्ता में मारे गये। दंगे की आग नोआखाली धू-धू कर जल उठी। कलकत्ता और नोआखाली की दंगाई मानसिकता और बर्बरता बिहार की सीमा में आ गयी। गांधीजी सद्भाव कायम करना चाहते थे। यह थी महात्माजी की महान शख्सियत।

गांधी ने मुल्क की अखंडता को बरकरार रखने के लिए एक आखिरी कोशिश के तहत जिन्ना से आजाद भारत की सरकार का नेतृत्व संभालने का आग्रह किया था। जिसे माउंट बेटन ने जिन्ना को नहीं पहुंचाया था। अंग्रेजी सत्ता की साजिश, जिन्ना की जिद्द और राष्ट्रीय नेतृत्व की कमजोरी का नतीजा था—देश का विभाजन।

गांधीजी द्वारा रखे गये इस अनूठे प्रस्ताव को सुनकर शुरुआत में माउंटबेटन ने माना कि मैं चौंक गया। मैंने जिज्ञासा की, 'ऐसी पेशकश पर आखिर मिस्टर जिन्ना क्या कहेंगे?' गांधी का जवाब था, 'अगर आप उन्हें बतायेंगे कि यह फारमूला मैंने तैयार किया है तो उनका जवाब होगा 'उस धूर्त गांधी ने।' इस पर माउंटबेटन ने टिप्पणी की, 'मेरे ख्याल से मिस्टर जिन्ना की इस बात में सच्चाई होगी।' इसके जवाब में गांधीजी ने शिद्दत से कहा, 'में यह सुझाव पूरी ईमानदारी से दे रहा हूं।' बहरहाल गांधी की पेशकश जिन्ना को कभी बतायी ही नहीं गयी।

1946 की शुरुआत में प्रांतीय विधान-सभाओं के लिए चुनाव करवाये गये। जिन्ना ने एक चुनावी सभा में कहा कि यह चुनाव अंत की शुरुआत है। अगर इस चुनाव में मुसलमान पाकिस्तान के पक्ष में खड़े होते हैं तो हम आधी लड़ाई अभी जीत जायेंगे। अगर हम लड़ाई के पहले ही चरण में नाकामयाब हो गये, तो हम बर्बाद हो जायेंगे।

मुस्लिम लीग के चुनावी पोस्टर ने लोगों से कहा, 'दीन बनाम दुनिया, जमीर बनाम जागीर या हक, कोशी बनाम सफेद पोशी?' इनमें हर अक्षर पाकिस्तान की मांग की दुहाई दे रहा था।

चुनाव में सूबा-दर-सूबा सामान्य सीटों पर कांग्रेस ने अच्छा प्रदर्शन किया जबकि मुस्लिम सीटों पर लीग ने भारी जीत हासिल की। जिसने मुसलमानों के लिए अलग देश के एकमात्र मुद्दे पर चुनाव लड़ा था। उदाहरणार्थ, बंगाल प्रांत में मुसलमानों के लिए आरक्षित 119 सीटों में से 114 सीटों पर जीत दर्ज की। चूंकि राज्य विधान सभा में कुल सीटों की तादाद 250 थी। संयुक्त प्रांत में कुल 228 सीटों में से कांग्रेस ने 153 पर जीत दर्ज की और सरकार बना ली। संयुक्त प्रांत में मुसलमानों के लिए 66 सीट आरक्षित थी, जिसमें से 54 सीटों पर जीत दर्ज कर लीग ने मुस्लिम लोकमत का इशारा साफ कर दिया। मद्रास में कुल 215 सीटों में से कांग्रेस को 165 पर जीत दर्ज हुई लेकिन लीग ने मुसलमानों के लिए सुरक्षित सारी-की-सारी 29 सीटें जीत ली। कुल मिलाकर सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों में कांग्रेस ने 80.9 फीसदी मत प्राप्त किया और लीग ने 74.7 फीसदी मत हासिल कर लिया।

मुस्लिम लीग के टिकट पर चुनकर आये 400 विधायकों की बैठक नई दिल्ली के शानदार इम्पीरियल होटल में 9-10 जून, 1947 को हुई। इस बैठक ने भी भारत के विभाजन की पुरजोर मांग की।

इसीलिए गांधीजी ने आजादी मिलने के दिल जश्न मनाने की बजाय शोक मनाने का फैसला किया। गांधी के फैसले से करोड़ों व्यक्तियों की आकांक्षा आहत हुई थी। पर गांधीजी बंटवारे और हिंसा-प्रतिहिंसा की आग देख व्यथित थे। मशहूर शायर फैज ने लिखा :

ये दाग-दाग उजाला, ये सब गजीदा सहर
वो इंतजार था जिसका, ये वो सहर तो नहीं
ये वो सहर तो नहीं, जिसकी आरजू लेकर
चले थे यार की मिल जायेगी कहीं न कहीं
फलक के दश्त में तारों की आखिरी मंजिल
कहीं तो होगा शब-ए-सुस्त मोज का साहिल
कहीं तो जा के रुकेगा, सफीना-ए-गमे दिल

फैज की इस कविता में बंटवारे से ज्यादा गुस्सा बंटवारे की कीमत पर था। डेढ़ करोड़ आबादी की अदला-बदली, दसियों लाख निर्दोष लोगों का कत्ल और एक लाख से जयादा महिलाओं का अपहरण इस विभाजन की वजह से हुआ।

गतांक से आगे

गांधी की हत्या : क्या सच, क्या झूठ?

❑ चुनीभाई वैद्य

प्रश्न : एक आरोप यह भी है कि गांधीजी ने मुसलमानों का जरूरत से ज्यादा तुष्टिकरण किया, जिसके कारण पाकिस्तान का निर्माण हुआ।

उत्तर : मनुष्य-मनुष्य के बीच का दुराव तीन चरणों में होता है। पहले में मन में अपने-पराये का भेद आता है। यह है दुराव का बीज। बाद में शाब्दिक बोलचाल होती है और अन्ततः इसके बढ़ जाने पर दुराव पैदा होता है। भारत को एक रखने का जितना आग्रह हिन्दूवादियों का था उतना ही गांधीजी एवं उनके साथी राष्ट्रवादी नेताओं का था। दोनों भारत की अखंडता चाहते थे। परंतु दोनों का तरीका अलग-अलग था। हिन्दूवादी मुसलमानों को कहते थे—तुम म्लेच्छ हो, यवन हो, हमारी और तुम्हारी कभी नहीं बन सकती। यह देश हमारा है। यह भारतवर्ष है, यहां तुम्हें पराया होने के बावजूद अलग नहीं होना है, हमारे साथ ही रहना है। इस देश के मालिक पहले हम हैं, इसलिए हम तुम्हें जैसे रखें वैसे ही रहना होगा। गांधीजी एवं उनके जैसे दूसरे राष्ट्रवादी समझते थे कि मुसलमानों को 'तुम पराये हो, पराये हो' कहते रहने से उनमें परायेपन की भावना पैदा होगी और इसे जितना दुहरायेंगे वह उतनी ही दृढ़ होगी। उनको साथ रखने के लिए केवल ऊपर-ऊपर से 'तुम हमारे हो' कहेंगे तो भी भूल होगी, सच्चे हृदय से अपनायेंगे तभी परायेपन की भावना खत्म होगी। अपनापन जागृत होगा। साथ-साथ काम करते-करते एवं साथ-साथ जीते-जीते अपनापन स्वभावगत बनकर आत्मीयता बनेगी। समय के साथ-साथ घाव बढ़ता भी है और ठीक भी होता है। हमें क्या करना है? घाव को बढ़ने देना है या ठीक होने देना है? घाव पर नमक छिड़कना है या मरहम लगाना है—यह हमें तय करना है। हिन्दूवादी नमक छिड़कने एवं गांधी तथा उनके साथी मरहम लगाने के लिए प्रयत्नशील थे।

इसमें हिन्दू समाज के जात-पाँत एवं ऊँच-नीच के भेदभावों ने भी काम किया। इस देश में मुसलमानों की जनसंख्या इतनी कैसे हो गयी? किसी समय हिन्दुओं की जात-पाँत, ऊँच-नीच वगैरह भेद खटकता था तथा अनेक देवी-देवताओं की पूजा गलत लगती थी। कई लोग ऐसे भी थे जिन्हें हिन्दू समाज नीच एवं अस्पृश्य मानता था। ऐसे लोग गये पर अपने साथ मन में कड़ुवाहट लेकर गये। अनेक ऐसे लोग भी थे जिन्हें जबरन मुसलमान बनाया गया। उनके लिए हिन्दू समाज के दरवाजे बन्द हो गये। आज भारत, पाकिस्तान एवं बांग्लादेश में जो मुसलमान हैं वे सभी किसी समय हिन्दू थे। बहुत कम अरबी मूल के होंगे। शायद ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलेंगे। यानी मूलतः ये हिन्दुओं का ही लहू है। परन्तु अद्वैतवादी हिन्दुओं ने अपने द्वैतवादी व्यवहार के कारण मुसलमानों में परायेपन की भावना को दृढ़ किया। हिन्दू समाज ऊँच-नीच तथा छुआछूत के विचारों के कारण उन्हें न तो अपने साथ बैठा सका, न ही अपने में वापस ले सका। इतिहास में इस बात के प्रमाण हैं कि कश्मीर के मुसलमान एक समय धर्मान्तरण कर हिन्दू बनना चाहते थे परंतु काशी के पंडितों ने लम्बी शास्त्रीय चर्चा के बाद इनकार कर दिया। आज कश्मीर मुसलमान-बहुल होने के कारण, पाकिस्तान इस वास्तविकता का उपयोग कर रहा है।

परायेपन की यह भावना पीढ़ी-दर-पीढ़ी बढ़ती गयी। इसमें जिनका हित था ऐसे लोग खासकर उस समय के राजकर्ता अंग्रेजों ने इन बातों को अधिक भड़काया, शक्तिशाली बनाया, टिकाया एवं फैलाया। अन्ततः जिन्ना एवं उनके साथी आये और इस भावना का लाभ लिया। अंग्रेजों के सीधे सहयोग के कारण पाकिस्तान का निर्माण हुआ।

प्रश्न : गांधीजी पर मुसलमानों को अपनाने के लिए विशेष प्रयत्न करने का आक्षेप है। इस संबंध में आपको क्या कहना है?

उत्तर : गांधीजी पर मुसलमानों के तुष्टिकरण का आक्षेप लगाया जाता है और कहा जाता है कि तुष्टिकरण की इस नीति के कारण ही विभाजन हुआ। परंतु वास्तविकता यह है कि मुसलमानों को मुख्य धारा में लाने के प्रयास गांधीजी के भारत आने के पहले से चल रहे थे। उदाहरण के लिए 1857 की स्वर्ण जयंती के अवसर पर, इंग्लैंड में बोलते हुए वीर सावरकर ने मुसलमानों का उल्लेख इन्द्रधनुष के एक रंग के रूप में किया था। 1909 में आग कौमी मतदाता परिषदों की रचना हुई। 1916 के लखनऊ समझौते में मुसलमानों को जनसंख्या के अनुपात से अधिक प्रतिनिधित्व की बात को स्वीकारा गया। गांधीजी उस समय भारत जरूर आ गये थे, परंतु लखनऊ समझौते में उनकी कोई भागीदारी नहीं थी। फिर कौन थे इसके सूत्रधार? इसमें दो व्यक्ति मुख्य थे—लोकमान्य तिलक एवं मुहम्मद अली जिन्ना। लोकमान्य तिलक ने अपने निर्णय के समर्थन में कहा :

"कुछ महानुभावों का यह आरोप है कि

हम हिन्दू अपने मुसलमान भाइयों को ज्यादा तवज्जों दे रहे हैं। मैं कहता हूं कि यदि स्वशासन का अधिकार केवल मुस्लिम समुदाय को दिया जाय तो मुझे कोई एतराज नहीं होगा। राजपूतों को यह अधिकार मिले, तो परवाह नहीं। यदि यह अधिकार हिन्दुओं के सबसे पिछड़े वर्गों को भी दिया जाय तो मुझे कोई एतराज नहीं हिन्दुस्तान के किसी भी समुदाय को यह अधिकार दे दिया जाय, हमें एतराज नहीं मेरा यह बयान समूची भारतीय राष्ट्रीय भावना का प्रतिनिधित्व करता है। जब भी आप किसी तीसरी पार्टी से लड़ रहे होते हैं तो सबसे जरूरी होती है, आपसी एकता, जातीय एकता, धार्मिक एकता और विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं की एकता।''

(भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, पृ. 120)

श्यामा प्रसाद मुखर्जी भी जब स्वतंत्र भारत के पहले मंत्रिमंडल से अलग हुए तब हिन्दू महासभा में नहीं गये। क्योंकि उन्हें यह लगता था कि स्वतंत्र भारत की जिस पार्टी में मुसलमान या अन्य कौमों का प्रवेश न हो तो वह किसी भी प्रकार उचित नहीं है। सुभाष बाबू ने उल्टे कांग्रेस की शिकायत भी की कि वह (कांग्रेस) मुसलमानों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं दे रही है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मुसलमानों को साथ लेने की बात केवल गांधी की नहीं थी, हिन्दूवादी तथा दूसरे नेता भी गांधी के पूर्व इसके लिए सतत प्रयत्न करते रहे थे।

प्रश्न : पाकिस्तान के प्रस्ताव को कांग्रेस एवं गांधीजी ने ही स्वीकार किया। अगर वे इसे स्वीकार नहीं करते तो क्या पाकिस्तान बन सकता था?

उत्तर : पाकिस्तान का प्रस्ताव तो काफी बाद में आया, परंतु इसका सिद्धांत काफी पहले आया था। मशहूर शायर इकबाल, जिनका गीत 'सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा' हम स्वतंत्रता-दिवस के अवसर पर खूब उत्साह एवं आनन्द से गाते हैं, उन्हीं जनाब इकबाल साहब ने 1930 में इलाहाबाद में हुए मुस्लिम लीग के सम्मेलन में बोलते हुए कहा, *''मैं चाहता हूं कि पंजाब, पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत, सिन्ध एवं बलुचिस्तान, ये सभी एक हो जायँ एवं एक राज्य बने। मुझे लगता है कि जहां तक पश्चिमोत्तर भारत का संबंध है वहां तक पश्चिमोत्तर मुस्लिम राज्य, चाहे वह ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर हो या बाहर, यही मुसलमानों का आखिरी भाग्य है।''*

इकबाल साहब की इस बात पर जैसे मंजूरी की मुहर लगी 1937 में। यह पढ़ें : *''आज हिन्दुस्तान, एक प्राण, एकात्म राष्ट्र हो गया है, यह मानने की भूल करने से अपना काम नहीं चलेगा। उल्टे, इस देश में मुख्यतः हिन्दू एवं मुसलमान दोनों राष्ट्र है। इसे स्वीकार कर चलना चाहिए।''*

क्या ऐसा नहीं लगता कि ये मुहम्मद अली जिन्ना के शब्द हैं? इसमें दो राष्ट्र के सिद्धांत का स्पष्ट स्वीकार है न? स्वीकृति की मुहर किसने और कब लगायी? जानना है? तो जानिये 1937 में अहमदाबाद में हिन्दू महासभा के अधिवेशन में अध्यक्ष पद से स्वीकृति की यह मुहर लगायी थी वीर सावरकर ने। और देखिये 1943 में भी एक अवसर पर सावरकर ने कहा :

''मुझे जिन्ना के दो राष्ट्रों के सिद्धांत को लेकर कोई आपत्ति नहीं है, हम हिन्दू अपने में एक राष्ट्र हैं और यह ऐतिहासिक तथ्य है कि हिन्दू और मुस्लिम दोनों दो राष्ट्र हैं।''

(इंडियन एन्युअल रजिस्टर 1943, भाग-2, पृ. 10)

मुस्लिम लीग के अधिवेशन में जनाब इकबाल कहें कि उनका अलग राज्य (राष्ट्र) बनना चाहिए तभी झगड़े का अंत आयेगा, और हिन्दू महासभा के मंच से वीर सावरकर कहें, ये प्रजा दो हैं, एक नहीं, ये दो राष्ट्र हैं। फिर विभाजन के शेष क्या रहा? पाकिस्तान के सिद्धान्त को पुष्ट किसने किया? पहले किसने स्वीकार किया था, सो इससे साफ हो जाता है। और सावरकर ने सिर्फ यही वाक्य कहा हो ऐसा नहीं है, संपूर्ण हिन्दूवादी आंदोलन की नींव ही बिलकुल हिन्दू-मुस्लिम अलगाववाद पर डाली गयी थी—1920 के आसपास। देश के विभाजन के लिए मुस्लिम लीग जितनी जिम्मेवार है उतनी ही जिम्मेवार ये हिन्दूवादी प्रवृत्तियां हैं। इन दोनों ने मिलकर पाकिस्तान का निर्माण किया। एक ओर यह अलगाववादी आंदोलन धीरे-धीरे पर ठोस रूप से आगे बढ़ रहा था तो दूसरी ओर कांग्रेस एवं गांधीजी हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए प्रयत्नशील थे। गांधीजी दक्षिण अफ्रीका के दिनों से ही अपनी प्रार्थना सभाओं में हिन्दू-बौद्ध, मुस्लिम, पारसी, ईसाई आदि धर्मों के श्लोकों/आयतों को गवाते एवं भजन दुहरवाते थे। हम सभी एक ही ईश्वर की संतान हैं यह बात घुटती और गले उतरती जाती थी। साबरमती आश्रम में कुरेशी साहब जैसे मुसलमान भी रहते थे। कौमी एकता समूचे स्वराज आंदोलन का एक महत्त्वपूर्ण भाग था। इसके लिए सोच-समझकर प्रयत्न किये जाते थे—ये सभी बातें इतिहास में अंकित हैं। कांग्रेस में अखिल भारतीय स्तर के दर्जनों मुसलमान नेताओं के नाम गिनाये जा सकते हैं—डॉ. अन्सारी, हकीम अजमल खान, बदरुद्दीन तैयबजी, यहां तक कि खुद जिन्ना भी एक समय में कांग्रेस में थे। और इन सबों पर सिरमौर सदृश्य खान अब्दुल गफ्फार खान थे तो मौलाना अबुल कलाम आजाद कांग्रेस के अध्यक्ष थे। जबकि हिन्दूवादी आर.एस.एस, हिन्दू महासभा वगैरह में हिन्दू-मुस्लिम एकता की बात तो जाने दें, मुसलमानों के विरुद्ध वैरभाव रखना एवं लड़ना एकमात्र एजेण्डा था। अब आप ही बतायें कि अलगाववाद का पोषण किसने किया। ❑

(चुनीभाई वैद्य की पुस्तक 'गांधी की हत्या : क्या सच, क्या झूठ' से प्रकाशन क्रमश जारी रहेगा। **–कार्य. सं.**)

गतिविधियां एवं समाचार

संपूर्ण क्रांति मंच की अगली बैठक मुंगेर में

मंच के संयोजक भवानी शंकर कुसुम के त्यागपत्र पर लंबी चर्चा के बाद वर्तमान स्थिति में उनसे अगले कुछ समय तक बने रहने का आग्रह किया गया, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। मंच की राष्ट्रीय कार्यसमिति की निम्न प्रकार घोषणा की गयी :

भवानी शंकर कुसुम (संयोजक), घनश्याम, रमेश पंकज, रामधीरज, टिकेन्द्र, आशा बोथरा, वन्दना शर्मा तथा राजेन्द्र श्रीवास्तव (सदस्य)।

श्री रामशरण तथा श्री पंकज बेतिया को 'वैचारिक समूह' में मनोनीत करते हुए विशेष आमंत्रित के रूप में शामिल किया गया।

श्री प्रकाश नारायण ने मंच का अगला सम्मेलन 18-19 मार्च 2015 को दरियागंज, मुंगेर में करने का प्रस्ताव रखा, जिसे सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया।

सम्मेलन समाप्ति के तत्काल बाद नवगठित कार्यसमिति की बैठक में निम्न निर्णय लिये गये :

प्रदेशों में मंच का गठन तथा संपूर्ण क्रांति आंदोलन के पुराने साथियों को सक्रिय करने के लिए निम्न साथियों को वहां का प्रवास करने की जिम्मेदारी दी गयी :

महाराष्ट्र तथा गुजरात—भवानी शंकर कुसुम व पंकज। पश्चिम बंगाल तथा उड़ीसा—घनश्याम तथा रमण कुमार। उत्तर प्रदेश—रमेश पंकज तथा रमण कुमार। दिल्ली—महादेव विद्रोही, घनश्याम तथा भवानी शंकर कुसुम। झारखंड—भवानी शंकर कुसुम, रामशरण तथा पंकज। मार्च में मुंगेर में होनेवाले सम्मेलन की तैयारी की दृष्टि से संयोजक तथा कुछ साथी वहां जायेंगे, यह भी तय किया गया। **–भवानी शंकर कुसुम**

हरियाणा सर्वोदय मंडल का स्वच्छता कार्यक्रम

हरियाणा प्रदेश सर्वोदय मंडल और युवा ग्रामीण विकास समिति ने हरियाणा के करनाल और पानी जिला सर्वोदय मंडलों के द्वारा पिछले कई माह से स्वच्छता कार्यक्रम शुरू किया हुआ है। संजय नगर, ग्राम बरसत के राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय इसी कड़ी को आगे बढ़ाते हुए नवंबर माह में यह कार्यक्रम गढ़ी बेसिक जिला पानीपत में शुरू किया। प्रातः ग्रामीणों और युवा मंडल के नौजवानों ने पहले स्कूल में सभा रखी। सभा को संबोधित करते हुए श्री महावीर त्यागी ने व्यक्तिगत स्वच्छता और सामूहिक स्वच्छता पर सभा को समझाते हुए कहा कि हमारे देश में लोग व्यक्तिगत स्वच्छता साधने की कोशिश अपने ज्ञान और साधनों के अनुसार अवश्य करते हैं। अपने अपने शरीर, पहनने, ओढ़ने, बिछाने के वस्त्रों, अपने रहने के कमरे, अपने घर कहने का अभिप्राय यह कि अपनी सभी चीजों को साफ रखने का पूरा प्रयत्न करता है। यह दूसरी बात है कि लोगों को न तो पूरा ज्ञान है और न पूरे साधन ही उपलब्ध हैं।

अपनी गलत आदतों के कारण हमने पंचमहाभूतों, वायु, जल, पृथ्वी, आकाश और तेज सभी को प्रदूषित कर दिया है। भौतिकता के जाल में फंसकर पूरी प्रकृति को बिगाड़ लिया और बिगाड़ते चले जा रहे हैं।

सभा के पश्चात सैकड़ों की संख्या में स्कूल के छात्र-छात्राओं, नेहरू युवा केन्द्र के युवा मंडल के सदस्यों, ग्रामीण लोगों ने गांव में स्वच्छता के नारे लगाते हुए एक जुलूस निकाल कर सफाई के बारे में जन-जागरण किया। जुलूस के अंत में स्कूली बच्चों को स्कूल वापस भेजकर बाकी सभी ने पूरे गांव में कई टोलियों में बंट कर सफाई की। हमलोगों को देखकर परिवारों से कुछ बहनें भी सामूहिक सफाई में शरीक हुईं। सफाई के पश्चात् सरपंचजी और स्कूल के प्रिंसीपल ने सफाई साधनों को उपलब्ध कराने का आश्वासन दिया और नेहरू युवा केन्द्र के साथियों ने सफाई अभियान को गांव में चालू रखने का संकल्प लिया। सबके धन्यवाद के पश्चात् कार्यक्रम समाप्त हुआ। **–महावीर त्यागी,**

अध्यक्ष, हरियाणा प्रदेश सर्वोदय मंडल

बरेली में निःशुल्क चिकित्सा सर्वोदय शिविर आयोजित

जिला सर्वोदय मंडल, बरेली के तत्त्वावधान में बरेली (उत्तर प्रदेश) में निःशुल्क चिकित्सा सर्वोदय शिविर का आयोजन निर्धन बस्ती माधोबाड़ी में किया गया।

वैद्य देशदीप शर्मा ने रोगियों की सेवाभाव से आयुर्वेदिक चिकित्सा की। उन्हें स्वथ रहने के सरल नियम भी बताये। 60 रोगियों ने निःशुल्क चिकित्सा का लाभ उठाया। शिविर में विशेषकर मधुमेह, उच्च रक्तचाप, जुकाम, खाँसी, कब्ज, पेचिस, बवासीर, हृदय रोग आदि के रोगियों की चिकित्सा की गयी।

इस कार्यक्रम में जिला सर्वोदय मंडल बरेली के अध्यक्ष श्री भगवान सिंह दीक्षित तथा डॉ. महावीर सिंह उपस्थित थे। इस कार्यक्रम से उस क्षेत्र के निवासियों की सर्वोदय के प्रति रुचि बढ़ी। जनता को यह राहत-कार्य पसंद आया।

गीता जयंती भी मनायी गयी

गांधी नगर, बरेली में 3 दिसंबर, 2014 को जिला सर्वोदय मंडल द्वारा गीता जयंती का आयोजन किया गया। श्रीकृष्ण द्वारा गीता के संदेश दिये जाने का 5151 वर्ष होने का अवसर था।

डॉ. महावीर सिंह, गांधी मोहन देशदीप शर्मा तथा डॉ. सुमित्रा डे ने गीता का व्यक्ति के जीवन में महत्त्व पर प्रकाश डाला।

–डॉ. महावीर सिंह

संपादक के नाम पत्र

'सर्वोदय जगत' जग गया लगता है। नियमित अंक मिल रहे हैं। धन्यवाद!

'तरुणों से पुकार', 'विनोबा को देखा तो जैसे गांधी को देखा' बहुत अच्छा लेख था। पढ़कर आनन्द हुआ। इसका एक सुन्दर पत्रिका तैयार कराकर बाँटने की इच्छा है। 'सर्वोदय जगत' कितने युवा तक पहुँचेगा? वेबसाइट से कुछ पायेंगे, ऐसी आशा करता हूं।

ग्राहक संख्या 1400 है। हम बढ़ेंगे नहीं तो और घटते जायेंगे।

संपादकीय लेख और सुन्दर, स्पष्ट व प्रेरक होने चाहिए। राधा बहन सर्व सेवा संघ की अध्यक्ष थीं, तब उनके बहुत कम लेख मिलें।

डॉ. रामजी सिंह और दादा धर्माधिकारी के सुंदर, प्रेरक लेख पढ़े। सर्वोदय कार्यकर्ताओं, सर्व सेवा संघ की विविध समितियों, प्रादेशिक सर्वोदय मंडलों की मासिक गतिविधियां देने की जरूरत है। विश्व में सर्वोदय प्रवृत्ति चल रही है, इसकी जानकारी दे सकें तो उपयोगी होगा।

–बसंत भाई, *महेसाणा*

VSI-(E) 003 For the Year - 2015 to 2017 सर्वोदय जगत : 16-31 जनवरी, 2015 Regd.No. R.N.I.35495/78

और अंततः

बापू को तिलांजलि

❑ हरिवंश राय बच्चन

थैलियाँ समर्पित की सेवा के हित हजार
श्रद्धांजलियाँ अर्पित कीं तुमको लाख बार
जो तुम्हें न थी इनकी कोई आवश्यकता
पुष्पांजलियाँ भी तुम्हें देश ने दीं अपार
अब, हाय, तिलांजलि देने की बारी आयी
तुम तिल थे लेकिन रहे झुकाते सदा ताड़
तुम तिल थे लेकिन लिये ओट में थे पहाड़
शंकर-पिनाक-सी रही तुम्हारी जमीं धाक
तुम हटे न तिल भर गयी दानवी शक्ति हार
तिल एक तुम्हारे जीवन की व्याख्या सारी
तिल-तिल पर तुमने देश कीच से उठा लिया
तिल-तिल निज को उसकी चिंता में गला दिया
तुमने स्वदेश का तिलक किया आजादी से
जीवन में क्या, मरकर भी एक तिलस्म किया
कातिल ने महिमा और तुम्हारी विस्तारी
तुम कटे मगर तिल भर भी सत्ता नहीं कटी
तुम लुप्त हुए तिलभात्र महत्ता नहीं घटी
तुम देह नहीं थे, तुम थे भारत की आत्मा
जाहिर बातिल थी, बातिल जाहिर बन प्रकटी
तिल की अंजलि को आज मिले तुम अधिकारी

बापू को श्रद्धांजलि

❑ अशोक मोती

30 जनवरी, 1948 और उसके ईद-गिर्द चंद दिनों का यदि गहराई से अवलोकन किया जाय तो गांधीजी की बेचैनी हम परख सकते हैं। इससे यह भी स्पष्ट होगा कि फिरकापरस्तों से गांधीजी को अपनी मौत की पूरी आशंका थी और उस समय उनके मुंह से 'कल रहूंगा तब न' के जुमले निकलते थे। 29 जनवरी 1948 को खाँसी के लिए सूई लगाने की बात पर बापू मनु बहन से कहते हैं ''यदि गत सप्ताह की तरह धड़ाका हो, कोई मुझे गोली मार दे और मैं उसे खुली छाती झेलता हुआ भी 'सी' तक न करता हूं, 'राम' का नाम रटता रहूं, तभी कहना कि वह सच्चा महात्मा था। इससे भारतीय जनता का कल्याण ही होगा।'' स्पष्टतः गांधी को गोली मारने वालों की नियत का पूरा अंदाजा और आभास था। लेकिन वे सच्चे महावीर की तरह निर्भीक और मुस्कराते हुए गोलियों को सीने पर झेला और हत्यारे को हाथ जोड़कर प्रणाम और क्षमा किया।

30 जनवरी, 1948 को किशोरलाल भाई को पत्र खासकर 2 फरवरी को वर्धा जाने की सूचना लिखने के संबंध में बापू कहते हैं ''कल की कौन जानता है?'' फिर हत्या से कुछ घंटे पूर्व बापू और सरदार पटेल बात में निमग्न थे, लेकिन मनु बेन के कठियावाड़ के नेता रसिक भाई पारीख और ढेबरभाई जो गांधी से मिलना चाहते थे के लिए गांधी कहते हैं ''उनसे कहो, ''यदि जिन्दा रहा तो प्रार्थना के बाद टहलते समय बातें कर लेंगे।'' यानी गांधी के आभामंडल से परेशान होने वाले तथा राष्ट्र विभाजन का वकालत करने वालों की दुष्टतापूर्ण गतिविधियों से बापू पूरी तरह वाकिफ थे।

बापू अपने कथन से अलग नहीं हो सकते थे, जो उन्होंने 'गोलमेज सम्मेलन' में व्यक्त किया था—''मैं हिन्दू जरूर हूं, लेकिन जिस राजनीतिक आंदोलन का नेतृत्व कर रहा हूं, वह समुदाय आधारित आंदोलन न होकर प्रबल सर्वजनीय आंदोलन है और इसमें भारत के सभी धर्मों का प्रतिनिधित्व है।'' उन्होंने कहा, धार्मिक आधार पर लोगों में अंतर देखा जा सकता है, लेकिन अन्य आधारों पर उनका विभाजन किया जाना सर्वथा अनुचित है।

अत्यन्त दुःखद है कि साम्प्रदायिक शक्तियां, जिसने राष्ट्रपिता महात्मा की हत्या की थी, पुनः न केवल सिर उठाने लगी हैं, बल्कि हत्यारे को महिमामंडित कर उनकी मूर्ति लगाने की भी घृणित कोशिश कर रही है, जो इस राष्ट्र और जनता का अपमान है। सर्व सेवा संघ ने ऐसे फैसले का कड़ा विरोध किया है और उच्चतम स्तर पर इस विरोध को गुंजायमान किया है। सर्व सेवा संघ अपने निर्णय के अनुसार 30 जनवरी को पूरे देश में जिला मुख्यालय में शहीद दिवस, 12 फरवरी को गांधीजी की जहां अस्थियां विसर्जित की गयी थीं, वहां पर रैलियां तथा 25-26 मार्च को दिल्ली में राजघाट या जंतर-मंतर पर दो दिवसीय राष्ट्रीय उपवास किया जायेगा।

हम उनके अहिंसात्मक सेना के सिपाही हैं और उनके साम्प्रदायिक सदभावना के संदेश को जिसके लिए उन्होंने अपने प्राणों की बलि चढ़ायी, देशवासियों और विश्व तक अवश्य फैलायेंगे।

सर्वोदय जगत कर्मवीर राष्ट्रपिता को उनकी शहादत पर भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है और इस अकाट्य सत्य को प्रकट करता है कि गांधी के आदर्श ही संपूर्ण विश्व को बचा सकता है और हम इस पथ से कभी विचलित नहीं होंगे।

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा सुरभि प्रिन्टर्स, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया वाराणसी से मुद्रित। संपादक : बिमल कुमार, कार्य.संपादक : अशोक मोती। छपी प्रतियाँ : 1450